# सौभाग्योदयम्

अनन्त श्री विभूषित गौड़पादाचार्य विरचित

## सुभगोदय स्तुति

की व्याख्या सहित हिन्दी-टीका

— लेखक —

डा० ताराचन्द गर्ग,
एम०बी०, बी०एस०, एम०एस०
विभागाध्यक्ष एवं प्राध्यापक शरीर-रचना शास्त्र
चिकित्सा महाविद्यालय, रायपुर (म०प्र०)

मूल्य पाँच रुपये 8—00

# सौभाग्योदयम्

अनन्त श्री विभूषित गौड़पादाचार्य विरचित

## सुभगोदय स्तुति

की व्याख्या सहित हिन्दी-टीका

●

— लेखक —

डा० ताराचन्द गर्ग,

एम०बी०, बी०एस०, एम०एस०

विभागाध्यक्ष एवं प्राध्यापक शरीर-रचना शास्त्र

चिकित्सा महाविद्यालय, रायपुर (म०प्र०)

●

मूल्य पाँच रुपये

प्रकाशक—

योगश्री पीठ ट्रस्ट,

मुनिकीरेती (वाया ऋषिकेश)

जिला टिहरी गढ़वाल (उ० प्र०)

सर्वाधिकार प्रकाशक के सुरक्षित

प्रथमावृति—१००० प्रतियाँ

संवत् २०२९ विक्रमी

सन् १९७३ ई०

मूल्य—५.००

मुद्रक—

देवेन्द्र विज्ञानी,

विज्ञान प्रेस, ऋषिकेश (उ०प्र०)

❋ श्री हरिः ❋

अनन्त श्री विभूषित जगद्गुरु श्री शङ्कराचार्य

श्री स्वामी शान्तानन्द सरस्वती जी महाराज

ज्योतिर्मठ—बदरिकाश्रम, उत्तराखण्ड (हिमालय)

का

# शुभाशीर्वाद

'सुभगोदय स्तुति' की रचना श्रीमत् परमहंस परिव्राजकाचार्य गौड़पादाचार्य महाराज ने की थी। इसमें केवल ५२ श्लोक हैं। इतना संक्षिप्त होते हुए भी यह 'श्री विद्या' का प्रामाणिक ग्रन्थ माना जाता है। प्रसिद्ध वृत्तिकार श्री रामेश्वर, श्री लक्ष्मीधर आचार्य, श्री भास्करराय आदि विद्वानों ने 'सुभगोदय' ग्रन्थ का संकेत अपनी-अपनी रचनाओं में यत्र-तत्र किया है।

डाक्टर ताराचन्द गर्ग ने बड़े परिश्रम, निष्ठा एवं मनोयोग से 'सुभगोदय' की टीका 'सौभाग्योदयम्' नाम से की है। उन्होंने ग्रन्थ के प्रारम्भ में एक विद्वत्तापूर्ण भूमिका लिखकर ग्रन्थ की महत्ता का प्रतिपादन किया है। अपनी टीका में उन्होंने अपने विचारों की पुष्टि वेदों, उपनिषदों, तन्त्र ग्रन्थों से की है। लेखक महोदय ने बड़े परिश्रम से कुण्डलिनी शक्ति के स्वरूप, उसके जागरण की विधि, षट्चक्र-भेदन, कुण्डलिनी जागरण के फल, लयक्रम, जागरणोपरान्त कुण्डलिनी की अवस्थायें आदि विषयों की अत्यन्त अनुभवपूर्ण व्याख्या की है। लेखक ने

अपने ग्रन्थ में समयाचार (दक्षिण मार्ग) का प्रतिपादन और कौलाचार (वाम मार्ग) का खण्डन युक्तियुक्त पूर्ण किया है।

डाक्टर गर्ग की यह टीका टीका मात्र नहीं है, वरन् स्वतः पूर्ण ग्रन्थ है। विशिष्ट स्थलों के प्रतिपादन में लेखक के पाण्डित्य, सारग्राहिणी वृत्ति का विधिवत् परिचय प्राप्त होता है। ऐसी सुन्दर कृति की रचना के लिये डा० गर्ग मेरे स्नेह और बधाई के पात्र हैं। अन्त में मेरी मंगल-कामना है कि इस पुस्तक का अधिकाधिक प्रचार और प्रसार हो जिससे देश में आध्यात्मिक भावना की अभिवृद्धि हो।

शुभैषी
शान्तानन्द सरस्वती

श्री हरिः

श्री राजराजेश्वरी त्रिपुरी सुन्दरी की श्रीविद्या के स्वरूप, माहात्म्य, रहस्य आदि का परशुराम कल्पसूत्र तथा विविध तन्त्रों में सुन्दर रूप से वर्णन है। सुभगोदय के थोड़े से ही श्लोकों में उसका सार संकलित है। डा० ताराचन्द गर्ग ने इस पर सुन्दर विस्तृत टीका लिखी है। यत्र-तत्र इसे देखा। इसमें अनेक रहस्यमय रूप-तत्वों का सुन्दर संकलन किया गया है। साधकों के लिए पुस्तक अत्यन्त उपादेय है।

कार्तिक कृष्णा २,
सं० २०२७ वि०
१६-१०-७०

**करपात्री स्वामी**

प्रेरणा के स्रोत—

ब्रह्मलीन परमगुरुदेव

श्री १०८ श्री योगेन्द्र विज्ञानी जी महाराज

# समर्पण

जिनके कृपा-कटाक्ष से जन्म-जन्मान्तरों के मलों का क्षय होकर शक्तिपात के द्वारा भगवती कुण्डलिनी शक्ति का जागरण होता है,—ऐसे अनुग्रह-निग्रह-कर्ता, प्रेरणा के स्रोत, ब्रह्मलीन परम गुरुदेव श्री १००८ श्री योगेन्द्र जी विज्ञानी एवं परमहंस परिव्राजकाचार्य सद्‌गुरुदेव श्री १००८ श्री स्वामी विष्णुतीर्थ जी महाराज तथा भगवती श्री महात्रिपुर सुन्दरी राजराजेश्वरी परम भट्टारिका श्री ललिताम्बिका के परम भक्तों को सादर समर्पित !

चरण-किंकर

गुरुपूर्णिमा, **ताराचन्द गर्ग**

संवत् २०२७ वि०

प्रेरणा के स्रोत—

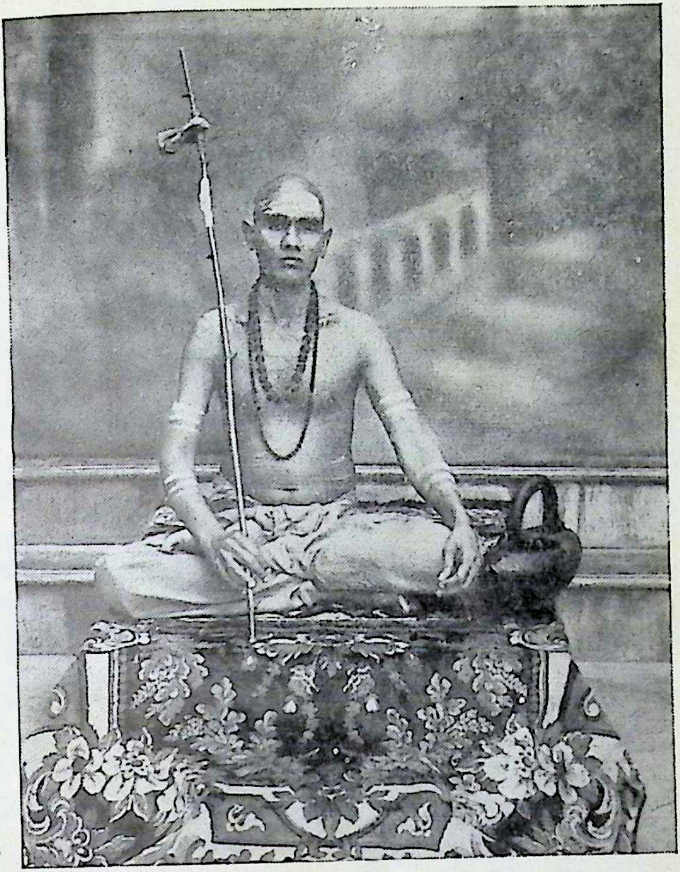

ब्रह्मलीन सद्गुरुदेव

श्री १०८ श्री स्वामी विष्णुतीर्थ जी महाराज

# ग्रन्थ का प्रयोजन

किसी भी ग्रन्थ के लिखने में लेखक का कुछ ध्येय होता है और उस ध्येय की पूर्ति के लिये ही उसमें विषय, उपाय आदि दिये जाते हैं। विवर्तवाद के जन्मदाता भगवान् श्री शंकराचार्य के परमगुरु एवं अजातवाद के प्रवर्तक परम कारुणिक अनुग्रह-निग्रहकर्ता आचार्य श्री गौड़पादाचार्य का किसी भी ग्रन्थ के लिखने का एक ही प्रयोजन हो सकता है और वह है—'अद्वैत का प्रतिपादन।' अद्वैत के लिये ज्ञान आवश्यक है और ज्ञान की प्राप्ति के लिये साधक को श्रवण, मनन तथा निदिध्यासन की नितान्त आवश्यकता होती है। सबसे पहले उसे वेदान्त के प्रतिपादक ग्रन्थों को गुरु-मुख से सुनना चाहिये। फिर उस विषय पर अपनी बुद्धि द्वारा विचार करना चाहिये और तदनन्तर उसका निरन्तर चिन्तन करना चाहिये। तब कहीं जाकर साधक को आत्मा तथा ब्रह्म के ऐक्य का बोध होगा। यह बोध साधक को परोक्ष रूप से न होकर अपरोक्ष रूप से होना चाहिये। केवल शाब्दिक ज्ञान से क्या लाभ? शाब्दिक ज्ञान तो परोक्ष ज्ञान है। केवल 'अहं ब्रह्मास्मि' कहने या सुनने से तो कोई ब्रह्म नहीं बन जाता, जैसे कि केवल सुनने या दूसरे के बताने से शक्कर के मिठास का अनुभव नहीं होता।

जब साधक को स्वानुभूति पर आश्रित अपरोक्ष ज्ञान होता है, तभी वह महा वाक्यों का अर्थ समझता है। अपरोक्ष ज्ञान के लिये निदिध्यासन की आवश्यकता होती है और जब अपरोक्ष ज्ञान का उदय होता है तभी साधक अनुभव करता है—'अहं

ब्रह्मास्मि'—मैं स्वयं ही ब्रह्म हूँ। यही वास्तविक अद्वैत-प्राप्ति है।

इस प्रकार के साधन के द्वारा साधक का जीव और ब्रह्म का भेद-भाव मिटकर अद्वैत की सिद्धि होती है। जो ज्ञान क्रिया के द्वारा अपनी अभिव्यक्ति न करे वह तो भार-रूप है। इसीलिये इस प्रकार के ज्ञानी को पुस्तकों के ढेर से लदे गधे के सदृश्य कहा गया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अपरोक्ष ज्ञान के लिये श्रवण, मनन एवं निदिध्यासन तीनों अत्यन्त आवश्यक हैं और इनके लिये 'साधन चतुष्टय' से सम्पन्न होना आवश्यक है। 'ब्रह्म ही सत्य है, तदितर सकल ब्रह्माण्ड अनित्य एवं असत्य है'—इस (नित्यानित्य या सद्-असद्) **विवेक** का उदय प्रथम साधन है। इस विवेक की प्राप्ति श्रवण तथा मनन के द्वारा होती है। जब इस प्रकार का विवेक हो जाता है तब **वैराग्य** का उदय होगा, जिससे कर्मफल में आसक्ति क्षीण होगी। तब शम, दम आदि के द्वारा उपरति प्राप्त होगी और तितिक्षा का उदय होगा। इस प्रकार जब साधक साधन-सम्पन्न हो जायेगा तब उसके चित्त में श्रवण, मनन आदि के लिये एकाग्र वृत्ति का प्रादुर्भाव होगा जिसके द्वारा उसे श्रद्धा एवं मुमुक्षुत्व की प्राप्ति होगी। इन सब गुणों से सम्पन्न होने पर ही साधक वेदान्त-श्रवण का वास्तविक अधिकारी बनता है और तब वह मोक्ष की इच्छा से परम कारुणिक, अहेतुक दया-सिन्धु, शान्त-दान्त, ब्रह्मवेत्ता, अनुग्रह-निग्रहकर्ता गुरु की शरण में जाता है जो उसे **अध्यारोप और अपवाद** विधि से ब्रह्म का ज्ञान कराता है। उपनिषदों में सर्वत्र अध्यारोप एवं अपवाद विधि का प्रयोग हुआ है।

गुरु शिष्य को बताता है—'यह संसार ही ब्रह्म है' अर्थात् वह निष्प्रपंच ब्रह्म में जगत् का आरोप करता है और फिर धीरे-धीरे अपवाद-विधि से एक-एक आरोपित वस्तु का निराकरण करता हुआ अन्त में 'ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्या' ज्ञान का अनुभव कराता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अद्वैत के वास्तविक ज्ञान के लिये चित्त की एकाग्रता अत्यन्त आवश्यक है अथवा हम कह सकते हैं कि यह वह धरातल है जिस पर अद्वैत ज्ञान का भवन खड़ा होगा। चित्त की एकाग्रता के लिये योग की आवश्यकता है। योग क्या है?—

**'योगश्चित्त वृत्ति निरोधः'**

योग का वास्तविक प्रारम्भ भगवती कुण्डलिनी शक्ति के जागरण के बाद ही होता है। अर्थात् भगवती कुण्डलिनी शक्ति का जागरण योग तथा अद्वैत ज्ञान का प्रथम सोपान है। इसीलिये परम कारुणिक भगवान् श्री गौड़पादाचार्य ने सांसारिक जीवों को मोक्ष-प्राप्ति की प्रेरणा देने के लिये इस ग्रन्थ की रचना की है और साथ ही साथ वाह्य कर्मकाण्ड का खण्डन करके भावना सहित अन्तर्याग का प्रतिपादन भी किया है।

इसी ध्येय से श्री गौड़पादाचार्य ने 'श्रीविद्या रत्न सूत्र' तथा 'दुर्गा सप्तशती भाष्य' की रचना की। इनके अतिरिक्त आचार्य श्री ने नरसिंह पूर्वतापनीय उपनिषद् पर भाष्य, उत्तर गीता वृत्ति, सांख्य कारिकाओं पर भाष्य तथा माण्डूक्य कारिकाओं की भी रचना की है। केवल माण्डूक्य कारिकाओं को छोड़कर ये सब ग्रन्थ आजकल दुष्प्राप्य हैं। नरसिंह पूर्वपातनीय उपनिषद् का भाष्य मद्रास सरकार की ओरियन्टल

मैन्युस्क्रिप्ट लायब्रेरी में क्रमांक ५८१ का ग्रन्थ है जो कि तेलगू लिपि में संस्कृत भाषा में है। उत्तर गीता वृत्ति वाणी विलास प्रेस ने छापी है।

भगवान् श्री गौड़पादाचार्य के विषय में अँग्रेजी में एक पुस्तक—'गौड़पाद : ए स्टडी इन अर्लि अद्वैत'—श्री टी०एम०पी० महादेवन ने लिखी है। यह पुस्तक मद्रास विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित की गई है और इसकी द्वितीयावृत्ति सन् १९५४ में छपी है। गौड़पादाचार्य के विषय में जिज्ञासु महानुभावों के लिये यह पुस्तक अवलोकनीय है।

**श्लोक १९ पर विशेष टिप्पणी—**

इस श्लोक में आचार्य श्री, श्रीविद्या के पञ्चदशी मन्त्र के तीनों खण्डों को बताने के बाद लिखते हैं—'इति च पञ्चाक्षर मनुः।' यहाँ इति शब्द का सम्बन्ध मन्त्र के तीन कूटों से है जो क्रमशः चार, पाँच तथा तीन अक्षरों के हैं और प्रत्येक खण्ड के अन्त में भुवनेश्वरी बीज है। इसके बाद आचार्यश्री ने 'च पञ्चाक्षर मनुः' और कहा है जिसके कई अभिप्राय हो सकते हैं—

यहाँ 'च' शब्द का प्रयोग दो प्रकार से हो सकता है—(१) 'च' का अर्थ 'और' लेकर तथा (२) 'च' का प्रयोग केवल पद-पूर्ति के लिये निरर्थक रूप में मानकर।

प्रथम अवस्था में अर्थ इस प्रकार होगा - 'ऊपर बताये अनुसार पंचदशी मन्त्र के तीन खण्डों के साथ पञ्चाक्षर मनु और लगाना चाहिये।' पञ्चाक्षर मनु से यहाँ तीन मन्त्र लिये जा सकते हैं—

(१) नमः शिवाय (२) नमः शिवायै तथा (३) पंच प्रणव।

नमः शिवाय तथा नमः शिवायै तो प्रसिद्ध पंचाक्षरी मन्त्र हैं ही। पञ्च प्रणव पाँच वीज हैं जो महाषोडशी मन्त्र के साथ प्रयोग किये जाते हैं। सम्प्रदाय में गोप्य होने से इन्हें यहाँ नहीं दिया जा रहा है। इस प्रकार हम इस श्लोक से पंचदशी के तीन भेदों का उद्धार कर सकते हैं। पहला पंचदशी के अन्त में 'नमः शिवाय' लगाकर—इस प्रकार से पंचदशी का मन्त्र शिव-शक्त्यात्मक हो जायेगा। दूसरे 'नमः शिवायै' जोड़कर, इस प्रकार के प्रयोग से यह केवल शक्ति-मन्त्र वनेगा तथा तीसरे प्रकार से पंचदशी के अन्त में पंच प्रणव लगाकर। सम्भवतः यहाँ आचार्यश्री का संकेत दूसरे प्रकार के प्रयोग की ओर ही लगता है।

यदि 'च' शब्द का प्रयोग केवल पद-पूर्ति के लिये ही किया गया है तो 'पंचाक्षर मनुः' का सम्बन्ध पंचदशी मन्त्र से हो जाता है। तव अर्थ इस प्रकार होगा –'यह चार, पांच तथा तीन अक्षरों वाले तीन खण्ड एवं प्रत्येक के अन्त में भुवनेश्वरी बीज वाला यह पंचाक्षर मनु है।'

यहाँ यह प्रश्न उठता है कि यह पंचाक्षर मनु किस प्रकार हुआ ? इस विषय में यह कहा जा सकता है कि 'पञ्चाक्षर मनु' से आचार्यश्री का तात्पर्य प्रत्येक कूट से है जो कि पाँच अक्षरों का है। हर कूट पाँच अक्षरों का किस प्रकार है ? मेरे परम पूज्य गुरुदेव ने अपनी सौन्दर्य लहरी की हिन्दी टीका में श्लोक ३२ तथा ३३ की टीका करते समय षोडशी विज्ञान के अन्तर्गत इसे स्पष्ट दिया है, जिज्ञासु पाठक वहाँ देखें। अथवा यदि हम हादि विद्या के मन्त्र को देखें तो उसके प्रथम कूट में आने वाले

पांच अक्षरों को ही कम-ज्यादा करके उसके बाकी दो कूटों का निर्माण होता है। इस प्रकार पूरा मंत्र प्रथम कूट में ही आ जाता है और यह पंचाक्षर मनु हो जाता है।

—डा० ताराचन्द गर्ग

॥ ॐ ॥

# मंगलाचरण

कर प्रणाम गणेश को, धर सरस्वती का ध्यान।
व्याख्या सुभगोदय पर करूँ, होउ सहायक ग्रान॥

ॐ नमो ब्रह्मादिभ्यो ब्रह्म विद्या सम्प्रदाय कर्तृभ्यो वंश ऋषिभ्यो महद्भ्यो नमो गुरुभ्यः सर्वोपप्लवरहितः प्रज्ञानघनः प्रत्यगर्थो ब्रह्मैवाहमस्मि।

ॐ नारायणं पद्मभवं वसिष्ठं शक्तिं च तत्पुत्रपराशरं च।
व्यासं शुकं गौड़पदं महान्तं गोविन्द योगींद्रमथास्य शिष्यं॥
श्री शङ्कराचार्यमथास्य पद्मपादं च हस्तामलकं च शिष्यम्।
तं त्रोटकं वार्तिककारमन्यान्यस्मद्गुरून्संततमानतोस्मि॥

श्रुति स्मृति पुराणानामालयं करुणालयम्।
नमामि भगवत्पादं शङ्करम् लोक शङ्करम्॥

शंकरं शंकराचार्यं केशवं बादरायणम्।
सूत्र भाष्य कृतौ वन्दे भगवन्तौ पुनः पुनः॥

ईश्वरो गुरुरात्मेति मूर्ति भेद विभागिने।
व्योमवद्व्याप्तदेहाय दक्षिणा मूर्तये नमः॥

सुषुम्नायै कुण्डलिन्यै सुधायै चन्द्रमण्डलात्।
नोन्मन्यै नमस्तुभ्यं महाशक्त्यै चिदात्मने॥

कल्पसूत्र के वृत्तिकार श्री रामेश्वर ने भी सुभगोदय के मत का विवरण ५वें सूत्र की अपनी व्याख्या में दिया है। श्री लक्ष्मीधर आचार्य ने तो अनेक स्थानों पर सुभगोदय का उल्लेख किया है। ४१वें श्लोक की व्याख्या करते हुए उन्होंने सुभगोदय के १६वें श्लोक का उद्धरण दिया है। श्री भास्करराय ने भी अपनी ललिता सहस्रनाम की व्याख्या में कई स्थानों पर सुभगोदय का नाम दिया है। सुभगोदय में आचार्यश्री ने भगवती की स्तुति के रूप में श्रीविद्या का सब रहस्य दे दिया है। श्रीविद्या उपासना का प्रमुख मार्ग है। हर उपासना के तीन प्रकार के भेद होते हैं—

(१) साधारा—बाह्य कर्मकाण्ड प्रधान

(२) निराधारा—भावना प्रधान तथा

(३) मिश्र—इस में प्रथम दीनों का समावेश होता है।

साधारा उपासना में साधक बाह्य साधनों का अवलम्बन करके उपासना में अग्रसर होता है, जैसे कि प्रतिमा आदि का पूजन। इस प्रकार की उपासना में बाह्य कर्मकाण्ड का प्राधान्य रहता है। इसके विपरीत निराधारा उपासना भावना प्रधान है। इसमें सभी बाह्य आलम्बनों को त्यागकर साधक केवल भावना के द्वारा ही उपासना करता है। इस प्रकार की निराधारा उपासना के लिये साधक के मन की परिपक्व अवस्था आवश्यक है। जब साधक जितेन्द्रिय एवं संयमी होकर योग-साधन के द्वारा कुण्डलिनी शक्ति का जागरण कर लेता है, तभी वास्तविक निराधारा उपासना का प्रारम्भ होता है और तभी राजयोग की प्राप्ति के द्वारा साधक समाधि के आनन्द का अनुभव करता है। जब साधक मूलाधार से उठाकर कुण्डलिनी

शक्ति को सहस्रार में ले जाता है, तब शिव-शक्ति के मिलन का आनन्द प्राप्त करता है एवं अमृत-रस का पान करता है।

उपासना तन्त्रों का विषय है। यद्यपि सभी उपासनाओं का आधार वेद ही हैं, किन्तु वेदों में यह विषय गोपनीय है। तन्त्रों तथा पुराणों में उपासना का विषय पर्याप्त रूप से स्पष्ट कर दिया है। हमारे जितने भी धार्मिक कृत्य हैं, वे सभी तांत्रिक हैं और उनका विशद वर्णन तन्त्रों में ही मिलता है। इस विषय पर मेरे परमपूज्य परम गुरुदेव श्री योगेन्द्र विज्ञानी जी ने अपनी 'महायोग विज्ञान' नामक पुस्तक में १८वें प्रकाश (पृष्ठ ५७०-५८२) में अच्छा प्रकाश डाला है। तन्त्र मुख्यतः तीन भागों में विभाजित किये गये हैं

(१) शैव (२) वैष्णव तथा (३) शाक्त।

'श्री विद्या' भगवती राजराजेश्वरी परम भट्टारिका श्री महात्रिपुर सुन्दरी की उपासना का मार्ग है, इसलिये यह उपासना शाक्त तन्त्रों में पाई जाती है। उपासना की दृष्टि से शाक्त तन्त्र तीन भागों में बाँटे जा सकते हैं—

(१) कौल मार्ग के तन्त्र (२) मिश्र मार्ग के तन्त्र, तथा (३) समयाचार के तन्त्र।

कौल मार्ग की उपासना अर्थ एवं काम की प्राप्ति के लिये है और यह ६४ तन्त्रों द्वारा प्रतिपादित है। इसमें साधक बाह्य उपासना तक ही सीमित रहता है और उसके द्वारा विभिन्न सिद्धियाँ प्राप्त करता है। मिश्र मार्ग धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष का देने वाला है। इस मार्ग के आठ प्रमुख तन्त्र हैं जिनके नाम इस प्रकार हैं—

(१) चन्द्र कला (२) ज्योत्स्नावती (३) कलानिधि

(४) कुलार्णव (५) कुलेश्वरी (६) भुवनेश्वरी (७) ब्राहस्पात्य एवं (८) दौर्वासा।

'भगवती कुण्डलिनी शक्ति ही महात्रिपुर सुन्दरी श्री राज-राजेश्वरी ललिताम्बिका है'—इस प्रकार का ज्ञान हो जाने पर साधक ब्राह्य उपासना का त्याग कर देता है और वह अन्तर्याग का अधिकारी हो जाता है। यही समयाचार या समय-मार्ग है। समय शब्द के अनेक अर्थ होते हैं—

(१) समय=स+मय=स=शक्ति, मय=परिपूरित
अर्थात् जिस मार्ग के द्वारा साधक शक्तिमय हो जाये या उससे परिपूर्ण हो जाये, वह समय मार्ग है।

(२) समय=सम+य=सम=समानता, य=को जो प्राप्त हो
अर्थात् जिस उपासना के द्वारा साधक साम्यता को प्राप्त करे, वह मार्ग। अथवा गीता के अनुसार जो 'समधी' बना सके।

(३) शिव-शक्ति के साम्य को भी समय कहते हैं। श्री लक्ष्मीधर आचार्य ने समय मत का प्रतिपादन करते समय यही अर्थ लिया है। समय भगवान् शिव को एवं समया श्री भगवती को कहा है। इनका पांच प्रकार का साम्य ही जानने योग्य मुख्य विषय है जो इस प्रकार है—
अधिष्ठान साम्य=एक ही स्थान में निवास
अनुष्ठान साम्य=एक ही प्रकार के कार्य करना
अवस्थान साम्य=एक ही प्रकार की अवस्था (या मुद्रा) में रहना

नाम साम्य=एक ही प्रकार का नाम होना तथा
रूप साम्य=एक ही प्रकार का रूप धारण करना

इस प्रकार के साम्य को जानकर जो उपासना की जाय, वह समय मार्ग की उपासना है।

(४) दहराकाश में चक्र आदि की भावना कर जो पूजादि की की जाये, उसे समय मार्ग की उपासना कहते हैं ( श्री भास्कर राय ने यही अर्थ लिया है। लक्ष्मीधर आचार्य ने भी इसी अर्थ में लिया है। देखें ल०स० व्याख्या ९७वां नाम)। श्री भास्कर राय के अनुसार शुभागम पंचक को भी समय कहते हैं।

(५) श्री भास्करराय ने समयाचार का अर्थ रुद्रयामल के दश पटलों में उपदिष्ट आचार भी किया है।

(६) महावेध संस्कार में सहस्र दल कमल में गई हुई शक्ति के पुनः आधार कमल में आने तक के प्रतीक्षा-काल को भी समय कहा है।

(७) 'सनकादि मुनि ध्येया'—इस नाम से भी समयाचार ग्रहण होता है।

(८) श्री लक्ष्मीधराचार्य सौन्दर्य लहरी के ८वें श्लोक की टीका में लिखते हैं—

**'समयाचारो नाम आन्तरपूजारतिः'**

(९) समयाचार वह मार्ग है जिसके द्वारा हम ब्रह्म के समीप पहुँचते हैं—समय=समीपन (अमर कोष)

(१०) समय=श्रेष्ठ (अ०को०) अर्थात् यह मार्ग श्रेष्ठ है, इसलिये यह समयाचार कहलाता है अथवा उपासना का श्रेष्ठ मार्ग है।

(११) समय=शिव। शक्ति शक्तिमान् से भिन्न नहीं है, यह जानकर शक्ति को परम शिवरूप से उपासना करना ही समयाचार है।

समयाचार का प्रतिपादन करने वाले ५ तन्त्र हैं जो कि शुभागम पञ्चक कहलाते हैं। इनके नाम आगे दिये जायेंगे।

इस प्रकार श्री विद्या की उपासना उपरोक्त तीन प्रकार से की जाती है और ये क्रमशः बहिर्याग, मिश्रयाग एव अन्तर्याग कहलाते हैं।

बहिर्याग में साधक स्वर्ण, रजत, ताम्र, स्फटिक, शालिग्राम-शिला आदि पर श्रीचक्र लिखकर बाह्य उपचारों द्वारा श्री भगवती की आराधना करता है। मन्त्र ही भगवती का शरीर है, यह मानकर इस क्रम में शनैः-शनैः मंत्र तथा यंत्र, यंत्र तथा देवता एवं देवता तथा गुरु का एक्य दर्शाया जाता है। यह मार्ग कौलाचार कहलाता है और इसके अन्तर्गत बिन्दु, त्रिकोण (योनि) का पूजन होता है। प्रत्यक्ष योनि-पूजन करने वाले उत्तर कौल कहलाते हैं।

मिश्रयाग में साधक बाह्य उपचारों के साथ-साथ भावना सहित अन्तर उपासना भी करता है। इस मार्ग में प्रत्यक्ष म-पञ्चक का प्रयोग है।

अन्तर्याग में साधक स्वयं के शरीर को 'श्रीचक्र' मानकर उपासना करता है। इस प्रकार की उपासना तभी सम्भव है जब साधक का मन बिना बाह्य उपकरणों के साधन में लग सके और यह उपासना कुण्डलिनी शक्ति के जागरणोपरान्त हो प्रारम्भ होती है। अन्तर्याग में साधक कुण्डलिनी शक्ति को मूलाधार पद्म से उठा कर षट्चक्र के वेध द्वारा सहस्रार में ले जाकर परम शिव में लीन कर देता है। यही शिव-शक्ति का मिथुन है (जिज्ञासु पाठक परम पूज्य पीताम्बरा पीठस्थ श्री स्वामी जी महाराज का समयाचार नामक लेख अवश्य

देखें जो श्रावण संवत् २०१० की चण्डी पत्रिका में छपा है तथा श्री पीताम्बरा संस्कृत परिषद् द्वारा प्रकाशित 'लेख-संग्रह' नामक पुस्तक में पृष्ठ ६८ से ११४ तक संग्रहीत है)।

साधक के मानसिक स्तर तथा प्रकृति के अनुसार ही गुरु उसे बहिर, मिश्र या अन्तर्याग की उपासना बताता है। तामसिक प्रकृति वाले साधक के लिए बहिर्याग, राजसिक प्रकृति वालों के लिए मिश्र मार्ग एवं सात्विक प्रकृति वाले साधकों के लिए अन्तर्याग की उपासना बताई जाती है। वास्तव में ये तीनों प्रकार की साधना उत्तरोत्तर श्रेणी की हैं। ज्यों-ज्यों साधक उपासना में अग्रसर होता जाता है, वह क्रमशः मिश्र एवं अन्तर्याग का अधिकारी बन जाता है। अन्तर्याग के लिये, जैसा कि कहा जा चुका है, कुण्डलिनी शक्ति का जागरण आवश्यक है। सम्प्रदाय भेद से शक्ति-जागरण के विभिन्न मार्ग हैं जिनका सम्बन्ध दीक्षा से है। इस विषय का विस्तृत विवेचन मेरे परम गुरु श्री योगेन्द्र विज्ञानी जी महाराज ने अपनी 'महायोग विज्ञान' नामक पुस्तक में किया है तथा मेरे परम पूज्य गुरुदेव श्री स्वामी विष्णुतीर्थ जी महाराज ने भी अपनी 'देवात्म शक्ति', 'साधन संकेत', 'शक्तिपात', 'वैदिक योग परिचय', 'सौन्दर्य लहरी की भाषा टीका' आदि पुस्तकों में इस विषय पर सुन्दर प्रकाश डाला है। सामर्थ्यवान् गुरु के केवल कृपा-कटाक्ष से ही कुण्डलिनी शक्ति का जागरण हो जाता है। इस प्रकार की दीक्षा को शास्त्रों में शक्तिपात दीक्षा, शाक्ती दीक्षा या वेध दीक्षा आदि नामों से कहा गया है। शक्तिपात का विवरण सन्त-साहित्य में भी प्रचुर मात्रा में है।

अन्तर्याग मोक्ष का साधन है। आचार्य श्री का उद्देश्य केवल मोक्ष ही तो हो सकता है। इसलिये आचार्यश्री ने

अपनी इस पुस्तक में कौल एवं मिश्र मार्ग को त्याज्य बताकर समयाचार का प्रतिपादन किया है। **समयाचार के पांच तंत्र** हैं जो कि सनक, सनातन, सनत्कुमार, वसिष्ठ एवं शुक द्वारा कहे गये हैं और शुभागम-पञ्चक के नाम से प्रसिद्ध हैं। इनके नाम इस प्रकार हैं

(१) वसिष्ठ संहिता, (२) सनक संहिता, (३) शुक संहिता, (४) सनन्दन संहिता तथा (५) सनत्कुमार संहिता।

इनमें समयाचार ही प्रतिपादित है एवं चन्द्र-विज्ञान के आधार पर उपासना बताई गई है। 'श्री विद्या' ही चन्द्र-विद्या है। ये ग्रन्थ आजकल उपलब्ध नहीं हैं।

सुभगोदय स्तुति का आधार समयाचार के तन्त्र ही हैं। श्रीविद्या अति प्राचीन उपासना-पद्धति है एवं वेद-प्रतिपादित है। तैत्तिरीय आरण्यक (काठक श्रुति) में यह विषय दिया गया है और उसी के आधार पर आचार्य श्री की यह पुस्तक है। श्रीविद्या गायत्री विद्या का ही भेद है। आचार्य श्री भास्करराय ने अपनी वरिवस्या रहस्य में लिखा है कि गायत्री विद्या का साधारण रूप तो वेदों में प्रकट रूप से वर्णित है, किन्तु उसका गुप्त स्वरूप सांकेतिक शब्दों में दर्शाया है और यह गुप्त रूप ही श्री विद्या है। श्री भास्करराय ने गायत्री मन्त्र से श्रीविद्या का उद्धार भी बताया है। शारदा तिलक में भी इसका प्रतिपादन है। यह विषय त्रिपुरातापिन्युपनिषत् में भी विस्तारपूर्वक दिया गया है। भगवती कुण्डलिनी ही गायत्री देवी है और यही श्रीविद्या है, इसलिये श्री विद्या का दूसरा नाम कुण्डलिनी उपासना भी है।

श्री विद्या उपासना की बड़ी बलवती पद्धति है। इसके आचार्य आज भी दक्षिण भारत, काश्मीर, नेपाल आदि स्थानों

में मिलते हैं। इन्दौर में भी श्री अन्नपूर्णा मां का मन्दिर तथा उज्जयनी में हरसिद्धि देवी का मन्दिर श्री यन्त्र पीठ हैं। रायपुर के पास भी सीरपुर नामक स्थान पर श्री यन्त्र की स्थापना की गई हैं।

श्री भगवत्पाद श्री शंकराचार्य विरचित सौन्दर्य लहरी भी श्री विद्या का ही ग्रन्थ है। सौन्दर्य लहरी को यदि सुभगोदय स्तुति का ही दूसरा रूप कहा जाय तो अतिशयोक्ति न होगी। वास्तविकता तो यह है कि आचार्य श्री गौड़पाद ने जिस वृक्ष का रोपण किया, उसे श्री भगवत्पाद श्री गोविन्दपादाचार्य ने सींच कर बड़ा किया एवं श्रीमद्भगवत्पाद श्री शङ्कराचार्य ने जगत्-कल्याणार्थ उस वृक्ष के सुमधुर फलों का सर्वसाधारण जनों में वितरण किया।

सौन्दर्य लहरी पर अनेक भाषाओं में भाष्य उपलब्ध हैं। मेरे परम पूज्य गुरुदेव श्री स्वामी विष्णुतीर्थ जी महाराज ने भी साधकों के कल्याणार्थ इस पर श्री विद्या तत्वविमर्षनि नामक टीका लिखकर भक्तों को अनुग्रहीत किया है तथा श्री विद्या, श्रीचक्रनिर्माण इत्यादि गूढ़ विषयों का विवेचन अत्यन्त सरल एवं हृदयग्राही ढंग से किया है।

सुभगोदय शब्द दो शब्दों के योग से बना है—सुभगा एवं उदय अर्थात् सुभगा का उदय। सुभगा शब्द उपनिषदों में यत्र-तत्र आया है और प्रत्येक स्थान पर इसका उपयोग श्री भगवती के लिए ही किया गया है, यथा—

**मदन्तिका मानिनी मङ्गला च,**
**सुभागा च सा सुन्दरी सिद्धिमत्ता।**

**लज्जा मतिस्तुष्टिरिष्टा च पुष्टा,**
**लक्ष्मीरुमा ललिता लालपन्ती ॥६॥**

—श्री त्रिपुरोपनिषद्

पारमात्मिकोपनिषत् के सप्तम अनुवाक की चौथी ऋचा में भी सुभगा शब्द का प्रयोग है—

**राकामहँ सुहवाँ सुष्टुती हुवे शृणोतु नः**
**सुभगा बोधतुत्मना सीव्यत्वपः सूच्याच्छिद्य ।**
**मानया ददातु वीरँ शतदायमुक्थ्यं स्वाहा ॥४**

टीकाकार ने वहाँ सुभगा शब्द की टीका करते हुए लिखा है—

**भगः श्री काम महात्म्य वीर्य यत्नार्क कीर्तिषु ॥**

(अ०को० २३-२६)

**सु=अतिशय या बलवत् या पूजन (अ०को० २४-२, २४-५)**

**शृणोतु निखिलं दोष शृणोतु च गुणैर्जगत् । श्रूयते चाखिलैर्नित्यं श्रूयते च परम पदम् ।।इति।। सा भक्तस्य आर्तनादं श्रुत्वा तन्निवारणे यत्नं कर्तुं समर्था महानुभावावीर्यवती कीर्तिमती इत्यादि गुणाविशिष्टेत्यभि प्रायेण सुभगा इत्युक्तम् ।**

ललिता सहस्र नाम में भी भगवती का एक (७६१वाँ) नाम सुभगा है। टीकाकार श्री भास्करराय ने इस शब्द की विशद व्याख्या की है। कुण्डलिनी ही भगवती है। ललिता सहस्र नाम में भगवती का स्वरूप (११०वाँ नाम) कुण्डलिनी कहा है। श्री वृहस्पति विरचित श्री सरस्वती स्तोत्र में भी कुण्डलिनी एवं सुभगा शब्द आये हैं—

**शुक्लां मोक्षप्रियां रम्यां सुभगां शोभन प्रियाम् ।**
**पद्मे स्थितां कुण्डलिनीं शुक्लवर्णां मनोरमाम् ॥**

साधकों को सर्वसौभाग्यदायिनी होने से भी श्री विद्या सुभगा है, यथा—

**'प्रणतजन सौभाग्यजननीं ।'** —सौन्दर्य लहरी ५

अथवा इच्छा, श्री, ज्ञान, वैराग्य, कीर्ति, ऐश्वर्य, धर्म और मोक्ष ये ८ भग कहलाते हैं और कुण्डलिनी शक्ति के जागने के बाद साधक इन सभी को प्राप्त कर लेता है, इसलिये कुण्डलिनी शक्ति सुभगा है।

ऋग्वेद के विश्वेदेवा सूक्त में (१-१।८९) सुभगा शब्द सरस्वती के लिए आया है। भगवती कुण्डलिनी ही सरस्वती है—

**तान पूर्वया निविदा हूमहे वयं भर्ग मित्र मदिति दक्षमस्त्रिधम्। अर्यमणं वरुणं सोममश्विना सरस्वती नः सुभगा मयस्करत् ॥३॥**

भगवती से ही सकल ब्रह्माण्ड उत्पन्न होता है, इसलिये वह महायोनि अथवा सुभगा है।

आकृति सूक्त में भी सुभगा शब्द आया है—

**आकूतिं देवीं सुभगां पुरोदधे चित्तस्य माता सुहवा नो अस्तु ।**
**यामाशामेमि केवली सा मे अस्तु विदेयमेनां मनसि प्रविष्टाम् ॥२**

यहाँ पर सुभगा का अर्थ करते हुए परम पूज्य पीताम्बरा-पीठाधीश्वर श्री स्वामी जी लिखते हैं—'सौभाग्य विद्यारूप तथा सौभाग्यार्चन से अभिपूजित, समस्त ऐश्वर्यों को प्रदान करने वाली'—(ले० स०, पृ० सं० २९)।

तैत्तिरीय ब्राह्मण २-४-२ में भी सुभगा शब्द आया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सुभगा शब्द वैदिक शब्द है और इसका प्रयोग भगवती कुण्डलिनी शक्ति के लिए हुआ है।

अतएव सुभगोदय का अर्थ कुण्डलिनी शक्ति का उदय अर्थात् जागना होता है। इसलिए सुभगोदय स्तुति वह स्तुति है कि जिसके द्वारा भगवती कुण्डलिनी शक्ति का उदय होता है अथवा यह जागरणोपरान्त भगवती कुण्डलिनी शक्ति की स्तुति है। कुण्डलिनी शक्ति ही श्री विद्या है।

इस पुस्तक में कुल ५२ श्लोक हैं जिनको पांच भागों में विभाजित किया है। प्रथम १५ श्लोकों में 'यह शरीर ही श्री चक्र है', यह प्रतिपादित कर श्री चक्र एवं देह का ऐक्य निरूपण किया है तथा भगवती का विभिन्न प्रकार का ऐक्य दर्शाया है। श्लोक १६ से ३७ तक मन्त्र तथा श्री चक्र का ऐक्य बताया है। श्लोक ३८ एवं ३९ में शिव-शक्ति का साम्य दर्शाया गया है। श्लोक ४० तथा ४१ में प्रस्तारत्रय का निरूपण किया गया है। अन्त में श्लोक ४२ से ५२ तक कौलाचार आदि मतों का खण्डन करके समयाचार की श्रेष्ठता बताते हुए उसका प्रतिपादन किया है।

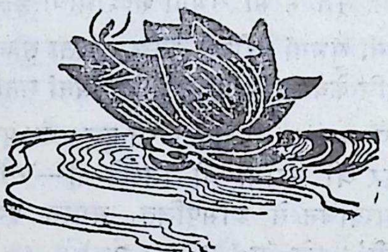

श्रीः

# सुभगोदय स्तुतिः

[ १ ]

भवानि त्वां वन्दे भवमहिषि सच्चित्सुख वपुः
पराकारां देवीममृतलहरीमैन्दवकलाम् ।
महाकालातीतां *कलितसरणी कल्पिततनुं
सुधासिन्धोरन्तर्वसतिमनिशं वासरमयीम् ॥१

सरल अर्थ—हे भवानी, शंकर की पटरानी, सच्चिदानन्द रूपा, पराकारा देवी, अमृत की लहरी, चन्द्रकला तथा महाकाल का भी अतिक्रमण करने वाली, किरणों से सजाये हुए कल्पित शरीर वाली, सदा अमृत के सरोवर में वास करने वाली (अन्धकार से रहित) दिन के प्रकाशवत् प्रकाशवती तुझ को मैं नमस्कार करता हूँ।

व्याख्या - यह श्लोक मङ्गलाचरण का है और इसमें भगवती कुण्डलिनी शक्ति की स्तुति की है। कुण्डलिनी शक्ति ही भवानी है (ल० स० नाम, ११०वां नाम)। श्री भगवती राजराजेश्वरी श्री महात्रिपुर सुन्दरी का ही एक नाम भवानी है अर्थात् भवानी, कुण्डलिनी शक्ति तथा श्री महात्रिपुर सुन्दरी सब एक ही हैं।

---

*पाठान्तर—'कलित सरणीं कल्पित तनुं'

भव शब्द अनेकार्थ वाचक है और अन्=जीवन देना या स्पन्दित करना।

**भव=भगवान् शंकर**

**शिवः शक्त्या युक्तो भवति शक्तः प्रभवितुं ।**
**न च देवं देवो न खलु कुशलः स्पन्दितुमपि ॥**

—सौन्दर्य लहरी, १

बिना शक्ति शिव शव हो जाता है। यदि शिव शब्द में से 'इ'कार रूपी शक्ति निकाल दें तो शव रह जाता है। अर्थात् शक्ति ही भगवान् शंकर को जीवन देती है या शक्ति के योग से ही भगवान् शंकर में स्पन्द होता है। शक्तियुक्त शिव ही संसार की रचना आदि का कार्य कर सकता है, निष्क्रिय ब्रह्म तो स्पन्द रहित है। उसमें जो स्पन्द है, वही शक्ति है। शक्ति के द्वारा ही सब कार्य सम्पन्न होते हैं।

ललिता सहस्र नाम में (३७३वां नाम) भगवती को कामेश्वर प्राण नाड़ी कहा गया है अर्थात् भगवती ही भगवान् शंकर को प्राण देने वाली है। भगवती के अमृत रूपा होने से ही भगवान् शंकर हलाहल पान कर लेने पर भी मृत्यु से बच गये। इस प्रकार भगवती भगवान् शंकर की प्राणदात्री है। भगवत्पाद ने सौन्दर्य लहरी में कहा है—

**किरन्तीमंगेभ्यः किरणनिकुरुम्बामृतरसं,**
**हृदि त्वामाधत्ते हिमकरशिलामूर्तिमिव यः ।**
**स सर्पाणां दर्पं शमयति शकुन्ताधिप इव,**
**ज्वरप्लुष्टान् दृष्टया सुखयति सुधाऽऽधा (सा)**
**रसिरया ॥२०॥**

**सुधामप्यास्वाद्य प्रतिभयजरामृत्युहरणीं,**
**विपद्यन्ते विश्वे विधिशतमखाद्या दिविषदः ।**

**करालं यत्क्ष्वेलं (डं) कबलितवतः काल कलना,**
**न शंभोस्तन्मूलं तव जननि ताटङ्क महिमा ।।२८।।**

अर्थात् भगवती **भगवान् शंकर को जीवन देने के कारण भवानी कहलाती है ।**

**भव=संसार**—यह परा शक्ति संसार को जीवन देती है या स्पन्दित करती है, इसलिये भी यह भवानी कहलाती है। भगवती ही प्राण शक्ति है। जगत् के सब कार्य शक्ति के द्वारा ही सम्पादित होते हैं। यह परा शक्ति ही जगत् के उदय आदि का कारण है। यही सब ब्रह्मांड को धारण किये हुए है। यदि ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश अपनी शक्ति से च्युत हो जायें तो ब्रह्माण्ड के सब कार्य रुक जायेंगे। यह परा शक्ति ही विश्व-जननी है, कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड की जन्मदात्री है। जिस प्रकार शिशु को माता के द्वारा जीवन मिलता है, इसी प्रकार सब ब्रह्माण्डों को यह प्राण देने वाली है। श्री गोस्वामी तुलसी दास जी ने इसीलिये कहा है—

**'भव भव विभव पराभव कारिनि'** तथा **'जगत जननि दामिनि दुति गाता'**—आदि।

श्रुति कहती है—

**अदितिर्द्यौरदिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्रः ।**
**विश्वे देवा अदितिः पंच जना अदिति र्जातमदितिर्ज-**
**नित्वम् ॥१०॥**

—विश्वेदेवा सूक्त, ऋग्वेद १-१-८९

दीङ् (क्षये)+क्तिन (कर्तरि)=अ+दिति=अदिति=अक्षयभूता, अखण्डिता=परा शक्ति

**एष सर्वेश्वर एष सर्वज्ञ एषोऽन्तर्याम्येष**
**योनिः सर्वस्य प्रभवाप्यौ हि भूतानाम् ॥६॥**

—माण्डूक्योपनिषत्

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य
जातः पतिरेक आसीत् ।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां
कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥१॥
यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक
इद्राजा जगतो बभूव ।
य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः
कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥३॥

—प्रजापति सूक्त, ऋग्वेद ८।१०।१२१

**भव=कामदेव**—'हर नेत्राग्नि संदग्ध काम संजीवनौषधिः' (ल० स० ८४वां नाम) अर्थात् कामदेव को, भगवान् शंकर के द्वारा भस्म हो जाने पर, भगवती की कृपा से ही फिर जीवन प्राप्त हुआ था अथवा भगवती मरे हुए प्राणियों को भी जीवन-दान देने का सामर्थ्य रखती है क्योंकि वह अमृतरूपा है, जैसा कि आगे कहा गया है—'अमृत लहरीं'—और इसलिये भी यह भवानी कही जाती है।

अथवा—बाला मन्त्र के काम बीज में शक्ति (ई) ही काम बीज को जीवन देने वाली है।

अथवा—कामदेव श्री विद्या की उपासना के द्वारा ही अपने विश्व-मोहक रूप में विद्यमान् है।

**भवानी**—भगवती के एक स्वरूप का नाम भी है जो कि स्थानेश्वर की अधिष्ठात्री देवी है—

**स्थानेश्वरी भवानी तु बिल्वके बिल्व पत्रिका**

—दे० भा० पुराण ७।३०।६१

**भवमहिषि**—शंकर की पटरानी अथवा भव=संसार—संसार की सम्राज्ञी, ल० स० नाम—श्री महाराज्ञी (२रा नाम),

चराचर जगन्नाथा (२४४वां नाम)। श्री माता परा शक्ति भगवती ही जगन्नायिका है, वही अखिल ब्रह्माण्ड की धात्री है, ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश रूप से वही संसार का सृजन, पालन तथा संहार करती है। श्री गोस्वामी तुलसीदास जो ने अपने रामचरित मानस में कहा है—

**उद्भवस्थिति संहार कारिणीं क्लेश हारिणीम्।**

**अजा अनादि सक्ति अविनासिनि,**
**सदा संभु अरधंग निवासिनि।**
**जग संभव पालन लय कारिनि,**
**निज इच्छा लीला वपु धारिनि॥**
**जगदंबिका जानि भव भामा,**
**सुरन्ह मनहि मन कीन्ह प्रणामा।**

—बाल कांड

भगवती परा शक्ति ही समग्र ब्रह्माण्ड की संचालिका एवं नियन्त्री होने से विश्व की महा सम्राज्ञी है, जैसा कि ऊपर बताये अनुसार माण्डूक्य एवं ऋग्वेद के वचनों से भी स्पष्ट होता है।

गीता में श्री भगवान् कहते हैं—

**पिताहमस्य जगतो माता धाता पितामहः।**
**वेद्यं पवित्रमोंकार ऋक्सामयजुरेव च॥**
**गतिर्भर्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत्।**
**प्रभवः प्रलयः स्थानं निधानं बीजमव्ययम्॥**

—अध्याय ९, १७-१८

**ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।**
**भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया॥**

—अध्याय १८, ६१

तंत्रोक्त रात्री सूक्त में भी भगवती को विश्वेश्वरी कहा है।

**सच्चित् सुखवपुः**—सच्चिदानन्द रूपे—मां भगवती का श्री-विग्रह सच्चिदानन्द स्वरूप है। श्रुति, पुराण, उपनिषद्, आगम, निगम आदि सब शास्त्र एक स्वर से उस परा शक्ति को सच्चिदानन्द रूप से पुकारते हैं।

सच्चिदानन्द शब्द तीन शब्दों से बना है—सत्, चित् एवं आनन्द (सत्, चित्, सुख), वपुः=शरीर=रूप

**महाकुण्डलिनी रूपे सच्चिदानन्द रूपिणी।**
**प्राणाग्नि होत्र विद्ये ते नमो दीपशिखात्मिके ॥१३॥**

- दे० भा० पुराण, स्कन्ध ४, अ० १५

**सत्**—भगवती परा शक्ति अपरिवर्तनशील है। देश, काल एवं परिस्थिति आदि के प्रभाव से उसमें कोई परिवर्तन नहीं आता। परिवर्तन तो माया के कारण केवल भासता है। '**ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या**' पर ही पूरा शांकर अद्वैत आधारित है। यह पारमी शक्ति ही सदा सर्वदा एक मात्र सत्य रूप से विद्यमान् है। केवल यह परात्पर शक्ति ही सापेक्षिता से रहित परम सत्य है। प्रख्यात विज्ञानवेत्ता श्री अल्वर्ट आइन्सटीन के सापेक्षिता के सिद्धान्त ने भी इस तथ्य को सिद्ध कर दिया है। जो कुछ भी इस संसार में है, वह सब सापेक्ष है। परम सत्य (एब्सोल्यूट) तो केयल एक ही हो सकता है और वह है परब्रह्म या परम तत्व या परा शक्ति, इसलिये यह भगवती परा शक्ति सत्य स्वरूप है। श्रुति भी कहती है—

**एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति**
**सत्यं ब्रह्म** —शत० ब्रा० १४–८–५–१

**सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म। यो वेद निहितं गुहायां परमे व्योमन्।**
**सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चितेति ॥**

—तै० उप०, ब्रह्मानन्द वल्ली–२

अर्थात् यह परब्रह्म परमात्मा सत्य स्वरूप है। 'सत्य' शब्द यहाँ नित्य सत्ता का बोधक है अर्थात् परब्रह्म ही नित्य सत्य है, किसी काल में उनका अभाव नहीं होता तथा वे ज्ञान-स्वरूप हैं, उनमें अज्ञान का लेश मात्र भी नहीं है और वे अनन्त हैं अर्थात् देश और काल की सीमा से अतीत, सीमा-रहित हैं। वे परब्रह्म आकाश में रहते हुए भी सब के हृदय की गुफा में छिपे हुए हैं। उस परब्रह्म परमात्मा को जो साधक जान लेता है, वह भली भांति सबको जानने वाले उस ब्रह्म के साथ रहता हुआ सब प्रकार के भोगों का अलौकिक ढंग से अनुभव करता है। भगवान् गीता में कहते हैं—

**ॐ तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविध स्मृतः।**
**ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च यज्ञाश्च विहिताः पुरा ॥२३॥**

—अध्याय १७

कुण्डलिनी शक्ति ही परब्रह्म है—

**ॐ नमस्ते परमं ब्रह्म कुण्डलिनी स्वरूपिणे।**
**निर्गुणाय नमस्तुभ्यं सद्रूपाय नमो नमः॥**

—महानिर्वाण तंत्र

अमर कोश (२३–८३) में सत् के कई अर्थ दिये हैं—

सत्=विद्यमान्—यह परा शक्ति सर्वत्र, सर्वकाल में विद्यमान् रहती है। महा प्रलय के बाद निर्गुण ब्रह्म रूप में भी विद्यमान् रहने से यह सत् स्वरूप है।

सत्=बहुत उत्तम—यह भगवती ही सबसे उत्तम है, इसलिये भी यह सत् है।

सत्=योग्य—एकमेव परा शक्ति ही जानने एवं पूजने योग्य है।

**चित्**—चित्=बुद्धि, धी, प्रज्ञा, चेतना, संवित् आदि (अ० कोश ५-१)

यह भगवती परा शक्ति ही चेतना है या यही सर्वत्र व्याप्त चेसन तत्व अथवा चिति शक्ति है। ललिता सहस्रनाम में भी उसे चिति, चिदेकरस रूपिणी, प्रत्यक्चितिरूपा (३६२, ३६४ तथा ३६७), चिन्मयी (२५१), चिच्छक्तिश्चेतना रूप (४१६-४१७) आदि नामों से स्मरण किया है। तंत्रोक्त रात्री सूक्त में कहा है—

**त्वं बुद्धिर्बोध लक्षणा।**

दुर्गा सप्तशती का देवी सूक्त कहता है—

**या देवी सर्वभूतेषु चेतनेत्यभिधीयते नमस्तस्यै ३ नमो नमः**
**या देवी सर्वभूतेषु बुद्धि रूपेण संस्थिता नमस्तस्यै ३ नमो नमः**
**चितिरूपेण या कृत्स्नमेतद्व्याप्य स्थिता जगत् नमस्तस्यै ३ नमो नमः**

योगशिखोपनिषत् में इस महाशक्ति को चिदात्मन तथा चिच्छक्ति कहा गया है—

**सुषुम्नायै कुण्डलिन्यै सुधायै चन्द्रमण्डलात्**
**मनोन्मन्यै नमस्तुभ्यं महाशक्त्यै चिदात्मने ।।६-३।।**
**ब्रह्मरन्ध्रे महास्थाने वर्तते सततं शिवा**
**चिच्छक्तिः परमा देवी मध्यमे सुप्रतिष्ठिता ।।६-४७।।**

देवी भागवत् में कहा है—

**चित् शक्तिः परमेश्वरस्य विमला चैतन्यमेवोच्यते ।।**

मेरे पूज्य गुरुदेव श्री स्वामी विष्णुतीर्थ जी विरचित शक्ति-

पात सूत्रों में भगवती को 'चितिर्वा' (प्रथम पाद, ३रा सूत्र) कहा है।

यामल में इसे चित्कला कहा है—

**ध्यायेत्कुण्डलिनीं देवीं स्वयंभूलिङ्ग वेष्टिताम् ।**
**चित्कलां यां कुण्डलिनीं तेजोरूपां जगन्मयीम् ।।**

**आनन्द=सुख**—वह भगवती परा देवी आनन्दस्वरूप भी है। सब आनन्द का स्रोत कुण्डलिनी शक्ति ही है। भगवती का विग्रह परम आनन्दमय है। श्रुति कहती है—

**विज्ञानमानन्दं ब्रह्म - बृ० आ० ऊ०**
**आनंदं ब्रह्म**

तैत्तिरीयोपनिषत् भृगुवल्ली षष्ठम अनुवाक में कहा है—

**आनंदो ब्रह्मेति व्यजानात्,**
**आनन्दाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते ।**
**आनन्देन जातानि जीवन्ति,**
**आनन्दं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ।**

अर्थात्—आनन्द ही ब्रह्म है, इस प्रकार निश्चयपूर्वक जाना, क्योंकि सचमुच आनन्द से ही ये समस्त प्राणी उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न होकर आनन्द से ही जीते हैं तथा इस लोक से प्रयाण करते हुए आनन्द में ही प्रविष्ट हो जाते हैं (इस प्रकार जो जान लेता है, उसे पर ब्रह्म का पूर्ण ज्ञान हो जाता है)। तैत्तिरीयोपनिषत् की ब्रह्मानन्द वल्ली के अष्टम अनुवाक में भी ब्रह्म के आनन्द स्वरूप का प्रतिपादन किया है।

ललिता सहस्रनाम में तो भगवती का स्वरूप परम आनन्दमय कहा है—'परमानन्दा' (२५२), स्वात्मानन्द लवीभूत ब्रह्माद्यानन्द संततिः (२६५)। भगवान् श्री शंकराचार्य ने सौंदर्य-

लहरी में भगवती को 'परमाल्हाद लहरीम्' अथवा 'परमानन्द लहरीम्' कहा है (श्लोक २१)।

सत, चित् एवं आनन्द—ये तीनों समाधि के स्तरों के भी द्योतक हैं।

सर्वप्रथम समाधि की अवस्था में साधक आनन्द का अनुभव करता है। इस स्तर पर साधक की त्रिपुटी बनी रहती है और ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय तीनों विद्यमान् रहते हैं। साधक की अहम्‌वृत्ति ज्ञाता है, परमात्मा ज्ञेय है एवं आनंदानुभूति ज्ञान है। इस अवस्था में जीव परमात्मा को अपने से अलग अनुभव करता है और इसी से उसे आनन्द की प्राप्ति होती है। जिस प्रकार कि प्रेमी अपने प्रिय से मिलने में आनन्द का अनुभव करता है, उसी प्रकार भक्त अपने इष्ट के मिलन से (ध्यान में) आनन्द प्राप्त करता है।

लेकिन यहां यह सोचने का विषय है कि आनन्द की अनुभूति कैसे होती है? अनुभूति मन का विषय है। मन ही सुख तथा दुःख का अनुभव करता है अर्थात् समाधि की इस अवस्था में मन तत्व रहता है और इसीलिये यह स्तर समनी स्तर कहा जा सकता है।

जब साधक इस से ऊपर की अवस्था में जाता है तो उसे भान तो रहता है, किन्तु वह उसका वर्णन नहीं कर सकता अर्थात् वह केवल चेतना का अनुभव करता है। इस स्तर पर अहं और इदं भाव विद्यमान् रहते हैं, पर इद के स्पष्ट ज्ञान का लोप होने लगता है अर्थात् इस अवस्था में द्वैत बना रहता है अथवा ज्ञाता और ज्ञेय दोनों रहते हैं, किन्तु ज्ञान का स्पष्ट अनुभव नहीं होता क्योंकि मन का लय होने लगता है, या यों कहें कि इस अवस्था में साधक मनस्तत्व के ऊपर जाने लगता है जैसा कि आगे कहा गया है—

'मनस्तत्त्वं जित्वा'– यह अवस्था उन्मनी अवस्था है।

अन्तिम स्थिति में साधक एवं साध्य, ज्ञाता तथा ज्ञेय, अहं तथा इदं का ऐक्य हो जाता है और यही साधना का चरम लक्ष्य है। इस अवस्था में द्वैत का नाश हो जाता है और परम अद्वैत का उदय होता है एव साधक स्वयं परब्रह्म में लीन हो जाता है। यही वास्तविक वेदान्त का ज्ञान है। इस अवस्था में ही साधक को 'अहं ब्रह्मास्मि' की अनुभूति होती है और वह महा वाक्यों का अर्थ समझता है। साधक इस अवस्था का वर्णन नहीं कर सकता क्योंकि इस स्तर पर दृश्य एवं दृष्टा का ऐक्य हो जाता है। इसीलिये इस अवस्था के अनुभव को गूँगे के गुड़ के सदृश्य कहा है। परमहँस देव भगवान् श्री रामकृष्ण देव ने कहा है—'नमक की पुतली समुद्र की थाह लेने जाय तो क्या वह लौटकर कुछ वता सकती है ? अरे, वह तो उसी में विलीन हो जाती है !' इस अवस्था से नीचे के स्तर पर ही साधक आनन्द का अनुभव करता है, इसीलिये निर्गुण अवस्था नीरस एवं सगुण अवस्था सरस है। यह अवस्था निर्विकल्प समाधि की अवस्था है। इस स्तर पर क्या था, क्या नहीं,- कुछ नहीं मालूम रहता। इन स्तरों को क्रमशः इन मन्त्रों द्वारा बताया गया है—

(१) सच्चिदानंदम् ब्रह्म,

(२) सच्चिदेकं ब्रह्म

(३) सत्यं ब्रह्म

यह मन्त्र वास्तव में थोड़ा बदल जाता है जो कि सम्प्रदाय-भेद है।

भगवान् ने गीता में कहा है—

ॐ तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः।
ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च यज्ञाश्च विहिताः पुरा ॥२३॥

तस्माद्दोमित्युदाहृत्य यज्ञ दान तपः क्रियाः ।
प्रवर्तन्ते विधानोक्ताः सततं ब्रह्म वादिनाम् ।।२४।।
तदित्यनभिसंधाय फलं यज्ञ तपः क्रियाः ।
दान क्रियाश्च विविधाः क्रियन्ते मोक्षकांक्षिभिः ।।२५।।
सद्भावे साधुभावे च सदित्येतत्प्रयुज्यते ।
प्रशस्ते कर्मणि तथा सच्छब्दः पार्थ युज्यते ।।२६।।
यज्ञे तपसि दाने च स्थिति सदिति चोच्यते ।
कर्म चैव तदर्थीयं सदित्येवाभिधीयते ।।२७।।

सत्, चित्, सुख—इन तीन गुणों पर ही उपासना के प्रकार आधारित हैं । आनन्द रूप ब्रह्म की उपासना कौल मार्ग का मुख्य आधार है । इस मार्ग में आनन्द ही मुख्य है और इसीलिए इस मार्ग में पंचमकारों को महत्व दिया जाता है । मिश्र मार्ग में चित् स्वरूप की प्रधानता रहती है और समयाचार में सत् की प्रधानता रहती है । जब कुण्डलिनी शक्ति सहस्रार में पहुँच जाती है तथा निर्विकल्प समाधी की अवस्था आती है तब केवल सत् स्वरूप विद्यमान् रहता है । यही समयाचार की उपासना का ध्येय हैं ।

**पराकारा**– उस महा शक्ति का आकार परा है अर्थात् वह परा शक्ति है । देवी भागवत के नवम स्कन्ध में भगवती के स्वरूप का वर्णन करते समय कहा है—

तेजः स्वरूपा पामा तदधिष्ठातृ देवता ।

तंत्रोक्त रात्रि सूक्त १० में इसे **"परा पराणां परमा त्वमेव परमेश्वरी"** कहा है ।

काम-कला-विलास के अनुसार—

स्फुट शिव शक्ति समागम वीजांकुर-रूपिणी पराशक्तिः
अनुत्तर-रूपानुत्तर-विमर्श-लिपि-लक्ष्य-विग्रहा भाति ॥३॥

**या सान्तरोहरूपा परा महेशी त्रिभाविता सैव**
**स्पष्टा पश्यन्तादि-त्रिमात्रिकाला च चक्रतां याता ॥२०॥**
**सेयं परा महेशी चक्राकारेण परिणमेत यदा ॥**
**तद्देहावयवानां परिणतिरावरणदेवता: सर्वा: ॥३६॥**

मेरे परम पूज्य गुरुदेव ने अपने शक्तिपात सूत्रों में लिखा है—

**उन्निद्रिता विशुद्धे तिष्ठति मुक्ति रूपा पराशक्तिः ॥** —पाद ४,३

श्वेताश्वेतर उपनिषद कहता है—

**तमीश्वराणां परमं महेश्वरं तं देवतानां परम च दैवतम्**
**पतिं पतीनां परमं परस्ताद्विदाम देवं भुवनेशमीड्यम् ॥६-७॥**
**न तस्य कार्यं करणं च विद्यते न तत्समाश्चाभ्यधिकश्च**
**दृश्यते ।**
**परास्य शक्ति र्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञान बल**
**क्रिया च ॥६-८॥**

ब्रह्मसूत्र—'परात्तु तच्छ्रुते' —२-३-४१

गीता में भगवान् स्वयं कहते हैं—

**'मत्तः परतरं नान्यत्'** —७, ७

भगवती के परा स्वरूप के विषय में अधिक जानकारी के लिए श्री पं० श्रीकृष्णदत्त जी भारद्वाज एम० ए०, आचार्य, साहित्यरत्न द्वारा लिखित पर तत्व मीमांसा नामक लेख देखें। यह कल्याण के अगस्त १९४६ (श्रावण २००३) के अङ्क में पृष्ठ १२६६-१२७५ पर छपा है।

भगवती कुण्डलिनी शक्ति वाणीरूपा है अथवा यह शब्द ब्रह्मरूपा है। वाणी चार प्रकार की है—

(१) परा (२) पश्यन्ति (३) मध्यमा एवं (४) वैखरी।

परा वाणी ही बाकी तीनों की जनक है और इसलिये भी यह भगवती पराकारा है। अर्थात् यह परा वाणीरूपा है। कामकला स्तव में कहा है—

**परया पश्यन्त्यापि च मध्यमया स्थूल वर्ण रूपिण्या ।**
**एताभिरेक - पञ्चाशदक्षरात्मिका वैखरी जाता ॥३२**

आचार्य श्री भास्कर राय ललिता सहस्रनाम की व्याख्या में परा से यही अर्थ लेते हैं (देखिए ३६६वें नाम की व्याख्या)।

त्रिपुरा सिद्धान्त के अनुसार परमानन्द नाथ पर प्रसन्न होने के कारण भगवती परा कहलाती है। या वह अनुग्रह का परम कारण होने से भी परा कही गई है। त्रिगुणातीत एवं कालातीत होने से भी भगवती परा रूपा है। पर शब्द का अर्थ उत्तम भी होता है (अमर कोश २३-१९१)। भगवती श्री विद्या सर्वोत्तम है अर्थात् वह साधना का सर्वोत्तम मार्ग है या वह सर्वोत्तम फलप्रदा है।

श्री विद्या मोक्षदात्री होने से भी वह परा विद्या है। ललिता सहस्रनाम में भगवती को परा-शक्ति (५७२), परमा (६१८) आदि नामों से संबोधित किया है।

**अमृत-लहरीम्**—भगवती कुण्डलिनी शक्ति अमृत की लहरी है अर्थात् वह अमृत रूपा है अथवा ब्रह्म अमृत स्वरूप है। श्रुति कहती है—

**'मृत्योर्मा अमृतगमय', 'उतामृतत्वस्येशानो',**
**'यज्ज्योतिरन्तरमृतं', 'यस्यच्छायामृतं'**

पूरी ऋचायें इस प्रकार हैं

**पुरुष एवेदँ सर्वं यद्भूत यच्च भाव्यम् ।**
**उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥२॥**

—शु० यजुर्वेद, पुरुष सूक्त ३१-२

**यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तर मृतं प्रजासु ।**
**यस्मान्न ऋते किञ्चन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिव सङ्कल्पमस्तु ।।३**

—शु० यजुर्वेद. अध्याय ३४, १-६

**य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः ।**
**यस्यच्छायामृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ।।२**

— ऋग्वेद, प्रजापत्ति सूक्त ८-१०-१२१

ललिता सहस्रनाम में भी श्री भगवती को 'सुधाधाराभिवर्षिणी' (१०६), 'मृत्यु मथनी' (१८१), 'सर्वव्याधि प्रशमनी', 'सर्वमृत्यु निवारिणी' तथा 'सुधा सृतिः' (७८६) आदि नामों से सम्बोधित किया है।

श्वेताश्वेतर उपनिषद् अध्याय ६ में कहा है—

**स तन्मयो ह्यमृत ईशसंस्थो ज्ञः सर्वगो भुवनस्यास्य गोप्ता ।**
**य ईशे अस्य जगतो नित्यमेव नान्यो हेतुर्विद्यत ईशनाय ।।१७**
**निष्कलं निष्क्रियꣳ शान्तं निरवद्य निरञ्जनम् ।**
**अमृतस्य परꣳ सेतुं दग्धेन्धनमिवानलम् ।।१६**

(२) शक्ति ही सब प्राणियों के जीवन का कारण है अर्थात् शक्ति के ही कारण सब प्राणियों में जीवन है क्योंकि शक्ति ही प्राण है। अथवा यह जीवनी शक्ति होने से अमृत स्वरूपा है।

(३) भगवती कुण्डलिनी शक्ति के जागरणोपरांत जिस समय अधोमुख सूर्य ऊर्ध्व मुख हो जाता है, उस समय सोम-मण्डल से अमृत टपकने लगता है और साधक के शरीर को आप्लावित करता है, जैसा कि आगे चतुर्थ श्लोक में कहा गया है—'सुधाधारासारैः स्नापयसि तनुं'। साधक जरा, मरण आदि को जीत लेता है। श्री ज्ञानेश्वर जी ने अपनी ज्ञानेश्वरी नामक गीता की व्याख्या में छठे अध्याय में इसका बड़ा सुन्दर वर्णन किया है।

(४) श्री विद्या की उपासना (कुण्डलिनी साधना) के द्वारा साधक अमरत्व की प्राप्ति कर लेता है, इस कारण भी यह अमृत की लहरी है।

(५) अमृत चन्द्रमा से टपकता है और 'श्री विद्या' चन्द्र-विद्या है इसलिए भी यह अमृत लहरा है।

**ऐन्दव कला—ऐन्दव=इन्दु=चन्द्रमा, तत्सम्बन्धी ऐन्दव कला=कला तु षोडशो भागो** (अ.को.३-१३)

अर्थात् कला चन्द्रमण्डल के सोलहवें भाग का एक नाम है। ऐन्दव कला अर्थात् चन्द्रमा की १६वीं कला। इस विषय पर मेरे परम पूज्य गुरुदेव अपनी सौन्दर्य लहरी की टीका में षोडशी विज्ञान पर व्याख्या करते हुए पृष्ठ १८६-१८८ पर लिखते हैं—

'चौथा पाद एकाक्षरी लक्ष्मी बीज है जो गुरु-मुख से ही प्राप्त किया जाना चाहिये। इसको चन्द्रकला कहते हैं······ वास्तव में अन्तिम एकाक्षरी लक्ष्मी बीज ही नित्या है, क्योंकि वह परा कला है और उसके कारण ही समस्त विद्या श्री विद्या कहलाती है······ ···सोलहवीं कला के आधीन ही अन्य कलायें घटती-बढ़ती हैं, वे स्वतन्त्र नहीं हैं। इसलिये इस विद्या का नाम श्री विद्या पड़ा है। शुक्ल और कृष्ण पक्ष की १४ तिथियां, पूर्णिमा और अमावास्या सहित १६ चन्द्र कलायें कहलाती हैं··· ···१६वीं कला शुद्ध चिति शक्ति चिन्मात्र निर्विकल्प समाधि में विराजने वाली स्वयं महात्रिपुर सुन्दरी है क्योंकि अन्य सब कलायें घटती-बढ़ती हैं, चन्द्र का बिंब सदा एक समान रहता है। इसलिए प्रत्येक कला को १६वीं कला का अंग समझना चाहिये।

श्री लक्ष्मीधराचार्य सौन्दर्य लहरी के ३२वें श्लोक की टीका में चन्द्रमा की १६वीं कला के बारे में लिखते हैं—

'षोडशी कला नाम शकार—रेफ—ईकार बिन्द्वन्तो मंत्र। एतस्यैव बीजस्य नाम श्री विद्येति। श्री बीजात्मिका विद्या श्री विद्येति रहस्यम्।'

चन्द्र-कला से उसकी १७वीं कला भी ली जा सकती है जो कि अमृत कला है। भगवती कुण्डलिनी शक्ति ऊपर कहे अनुसार अमृत लहरी होने से चन्द्रमा की १७वीं कला है। कामकला-विलास के ३७वें श्लोक की एक मराठी टीका में चन्द्रकला का अर्थ १७वीं कला ही लिया है—

**आसीना बिन्दुमय चक्रे सा त्रिपुर सुन्दरी देवी।**
**कामेश्वराङ्क निलया कलया चन्द्रस्य कल्पितोत्तंसा॥३७**

'चन्द्रमा ची सत्रावे अमृत कलेचा उतंस (मुकुट) धारण करूण अधिक आसमान आहे।'

ललिता सहस्रनाम में भगवती को चन्द्र-विद्या (२३९), चन्द्र-निभा (५९२) कहा है।

**महाकालातीतां**—भगवती महाकाल का भी अतिक्रमण करने वाली हैं।

काल=शंकर, समय, मृत्यु

भगवती शंकर का भी अतिक्रमण करने के कारण महाकालातीतां है। यथा—

**ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च ईश्वरश्च सदाशिवः।**
**एते पञ्च महा प्रेताः भूताधिपतयो मताः॥१॥**
**चत्वारो मञ्च चरणाः पञ्चम प्रच्छदः पटः।**
**संवित्प्रकाश रूपेण शिवेनाभिन्ना विग्रहा॥२॥**
**तत्रासने समासीनां निर्भरानन्द रूपिणी॥ यामले**

अथवा कुण्डलिनी शक्ति सहस्रार में जाते समय महाकाल का अतिक्रमण (आज्ञा चक्र में) करती है, इसलिये भी वह महाकालातीता है—

**आज्ञा पद्मं भ्रूवोर्मध्यं हक्षोपेतं द्विपत्रकम् ।**
**शुक्लाभं तन्महाकालः सिद्धो देव्यात्र हाकिनी ॥१३१**

—शिव संहिता, ५वाँ पटल

अथवा—

**शिवतत्वोर्ध्वतः शक्तिः परा सा समनाह्वया ।**
**सर्वेषां कारणानां सा, कर्तृ भूता व्यवस्थिता ॥**

—तंत्रालोक, अष्टम आह्निक, ४००

**नाद रूपं भ्रुवोर्मध्ये मनसो मण्डलं विदुः ॥१५॥**
**शांभवस्थानमेतत्ते वर्णितं पद्मसंभव ॥१६॥**

—या०शि०उ०, अ० ५,

शिव परा—ल०स० नाम ४१०

उपरोक्तानुसार शिव तत्व से ऊपर होने के कारण भी यह शक्ति तत्व महाकालातीता है अथवा रुद्र ग्रन्थी के भेदन के पश्चात् ही भगवती कुण्डलिनी शक्ति साधक के सामने प्रकट होती है, इसलिए भी वह महाकालातीता कही जा सकती है।

काल=मृत्यु=महामृत्यु=प्रलय

भगवती मृत्यु की भी मृत्यु है अर्थात् वह उससे भी परे है। यथा—

**यस्य ब्रह्म च क्षत्रं च उभे भवत ओदन ।**
**मृत्युर्यस्योपसेचनं क इत्था वेद यत्र सः ॥**

—कठ० १-२-२५

महा प्रलय के समय केवल यह परब्रह्मरूपिणी शक्ति ही शेष रहती है। ल० स० नाम २३२ में कहा है—

**'महेश्वर महाकल्प महाताण्डव साक्षिणी'**

**कलित सरणीं**—सरणीं=मार्ग या रेखा या किरण, कलित=सुन्दर, सुसज्जित या विकसित। श्रीविद्या की उपासना साधक को भोग और मोक्ष देती है, इसलिए यह मार्ग अति सुन्दर है तथा यह उपासना का सर्वश्रेष्ठ मार्ग है, इस कारण यह कलित सरणीं है।

श्री भगवती का शरीर किरणों का बना हुआ है। मातृकायें किरणें हैं और इन्हीं से भगवती श्री का शरीर बना है अथवा मंत्र के अक्षर किरणें हैं जिनसे कि मंत्ररूपी भगवती के शरीर की रचना हुई है। आज का भौतिक विज्ञान भी यह सिद्ध कर चुका है कि शक्ति किरणों का ही रूप है। इस कारण भी श्री भगवती कलित सरणीं है।

**कल्पित तनु**—भगवती के शरीर का बखान भला कौन कर सकता है? वह तो केवल कल्पना का ही विषय है, क्योंकि उस का कोई पार नहीं। पूर्ण साक्षात्कार तो केवल निर्विकल्प समाधि का विषय है और उस समय साधक और इष्ट स्वयं एक स्वरूप हो जाते हैं, तो फिर भला उसका वर्णन कौन करे? किसी भी वस्तु या व्यक्ति का स्वरूप पूर्ण रूप से तो जभी जाना जा सकता है जब स्वयं वही बना जाय और जब स्वयं वही हो गया तब द्वैत न रहने से बखान कौन करे? इससे नीचे के स्तर पर केवल कल्पना ही तो है।

स्वयं श्रुति भी जब उसका वर्णन नहीं कर सकती तो फिर उसके स्वरूप का वर्णन भला कौन कर सकता है? इसलिये भगवती का शरीर कल्पित तनु है।

श्री गोस्वामी तुलसीदास जी बड़े ही सुन्दर शब्दों में रामचरित मानस में कहते हैं—

**'गिरा अनयन नयन बिनु बानी'**

अथवा भगवती भक्तों की कल्पना के अनुसार शरीर धारण करने के कारण भी 'कल्पित तनु' कही जा सकती है, जैसा कि श्री गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं—

**'जिनके रही भावना जैसी, प्रभु मूरति देखी तिन तैसी'**

—बाल काण्ड

वह भगवती न चक्षु का विषय है, न वाणी का, इसलिये उसके विषय में केवल कल्पना की जा सकती है। श्रुति स्वयं कहती है—

**'न चक्षुषा गृह्यते नापि वाचा'**—तृतीय मुण्डक, प्रथम खण्ड–८
**'न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति'**—केन उप०, प्रथम खण्ड

**सुधासिन्धोरन्तर्वसतिमनिशं**—सुधा:=अमृत, सिन्धो=समुद्र, सागर, अन्तर=में, के मध्य में, वसति=रहती है, अनिशं=सदा, नित्य हमेशा आदि।

अनिश शब्द का अर्थ इस प्रकार भी लिया जा सकता है—अ+निश्, अ=नहिं, निश्=निशा या अन्धकार।

अर्थात् श्री भगवती नित्य अमृत के समुद्र में वास करती है। श्री भगवत् पाद श्री शङ्कराचार्य सौन्दर्य लहरी के ८वें श्लोक में कहते हैं—

**सुधासिन्धोर्मध्ये सुरविटपि वाटी परिवृते**
**मणि द्वीपे नीपोपवन वति चिन्तामणि गृहे ।**
**शिवाकारे मञ्चे परमशिव पर्यङ्क निलयां**
**भजन्ति त्वां धन्याः कतचिन चिदानन्द लहरीम् ॥**

इसी भाव को मंत्र-मातृका-पुष्प-माला में भगवान् श्री शङ्कराचार्य ने इन शब्दों में कहा है

**कल्लोलोल्लसितामृताब्धि लहरी मध्ये विरजन्मणि द्वीपे ॥१**

ललिता सहस्र नाम में भी कहा है– **'सुधा सागर मध्यस्था'**

सौन्दर्य लहरी के ८वें श्लोक की व्याख्या करते हुए मेरे परम पूज्य गुरुदेव कहते हैं–

**'निस्पन्द परम शिव आनन्द ब्रह्म परम पद सुधा सिन्धु है'**

जैसा कि श्वेताश्वेतर उपनिषद् के छठे अध्याय में भी कहा है—

**निष्कलं निष्क्रियं शांतं निरवद्यं निरञ्जनम् ।**
**अमृतस्य परं सेतुं दग्धेन्धन मिवानलम् ॥१९॥**

शक्ति शक्तिमान् के अन्दर रहती है, इसलिये यह पर ब्रह्म की परा शक्ति भगवती सुधा-सागर में निवास करती है अर्थात् परमशिव के अन्दर रहती है। अथवा भगवती सदा परम शिव के हृदय में विराजती है।

सुधा-सागर के विषय में आचार्य श्री भास्कर राय ललिता सहस्र नाम की व्याख्या में लिखते हैं कि यह लोक स्वर्ग (ऊपर के) लोकों में से एक है और तै० ब्रा० १-६-२ के अनुसार यह स्थान अमृत से घिरा हुआ है।

वैन्दव स्थान (अर्थात् चन्द्रमा का मध्य भाग) अमृत का स्थान है अथवा सागर है और यह सहस्रार में है। यही भगवती कुण्डलिनी शक्ति का निवास-स्थान है।

वामकेश्वर तंत्र में कहा है—

**बिन्दुस्थानं सुधा सिन्धुः पंच योन्यः सुरद्रुमाः ।**
**तत्रैव नीपश्रेणी च तन्मध्ये मणि मण्डपम् ॥**

तत्र चिन्तामणिकृतं देव्या मन्दिर मुत्तमम् ।
शिवात्मके महामञ्चे महेशानोप बर्हणे ॥
अतिरम्थे तत्र कशिपुश्च सदाशिवः ।
भृत्काश्च चतुष्पादा महेन्द्रश्च एतद्ग्रहः ॥
तत्रास्ते परमेशानी महात्रिपुर सुन्दरी ।
शिवार्क मण्डलं भित्वा द्रावयन्तीन्दु मण्डलम् ॥
तदद्भूतामृतस्यन्दि परमानन्दनन्दिता ।
कुल योषित्कुलं त्यक्त्वा परं वर्षणमेत्य सा ॥

—भैरव यामले, वामकेश्वर तंत्रे

सुधाब्धौ नन्दनोद्याने रत्न मण्डप मध्यगाम् ।
बालार्क मण्डल भासां चतुर्बाहां त्रिलोचनाम् ॥
पाशाङ्कुश शरांश्चापं धारयन्तीं शिवांश्रियम् ।
ध्यात्वा च हृद्गतं चक्रं व्रतस्थः परमेश्वरीम् ॥

अथवा—श्री चक्र के मध्य बिन्दुस्थान का नाम सुधा सिन्धु है और इस स्थान में श्री भगवती वास करती है। अर्थात् बिन्दु स्थान में श्री भगवती का पूजन किया जाता है ।

सौन्दर्य लहरी के अष्टम श्लोक की अरुण मोदनी टीका में परा अर्थ में लिखा है—सुधा-सागर अर्थात् हिमालय से समुद्र पर्यन्त अर्थात् शिर से पांव तक यह देह ही भगवती का निवास-स्थान है ।

**वासरमयीम्**—अर्थात् दिन के प्रकाशवत् ।

भगवती परा शक्ति परम प्रकाशमयी है । उसी के प्रकाश से यह सब संसार आलोकित हो रहा है, यथा—

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्र तारकं
नेमो विद्युतो भान्ति कुतोऽयम अग्निः ।

तमेव भान्तमनु भाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ॥१४

श्वेताश्वेतर, अध्याय ६

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्य वर्णं तमसः परस्तात् ।
तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥८॥

—शु०यजुर्वेद, उत्तर नारायण सूक्त

मूलाधारे मूलविद्यां विद्युत्कोटि सम प्रभाम् ।
सूर्यकोटि प्रतीकाशां चन्द्रकोटि द्रवां प्रिये ।
विसतन्तु स्वरूपां तां विन्दु त्रिवलयाम् प्रिये ॥

— ज्ञानार्णव तंत्र

तामग्नि वर्णां तपसा ज्वलन्तीं ।
वरोचनीं कर्म फलेषु जुष्टाम् ॥

— देव्युपनिषद्, श्र०शी० ९

नमस्ते अस्तु विद्युते नमस्ते स्तनयित्वे ।
नमस्ते अस्त्वश्मने येनो दूडाशे अस्यसि ॥

—अथर्व, काण्ड १, १३वां सूक्त

शक्तिः कुण्डलिनीति यानि गदिता आईम् संज्ञा जगन्निर्माणे ।
सततोद्यता प्रविलसत् सौदामिनी सन्निभां ।
शंखावर्त निभां प्रसुप्त भुजगाकारां ...... ॥

—त्रिपुरा सार समुच्चय

तडिल्लेखा तन्वीं, तपन शशि वैश्वानरमयीं ।

—सौ०ल०, श्लोक २१

भगवती के शरीर की आभा कोटि सूर्यों के समान है, वह सब अन्धकार का नाश करने वाली है। अथवा भगवती कुण्डलिनी शक्ति के जागरण होने पर अज्ञान रूपी अन्धकार का नाश होकर ज्ञान रूपी प्रकाश मिलता है । अथवा

जागरणोपरान्त जब भगवती कुण्डलिनी शक्ति ऊर्ध्वगामिनी होती है तो साधक को विभिन्न प्रकार की दिव्य ज्योतियों के दर्शन होते हैं। ये सब ज्योतियां भगवती कुण्डलिनी शक्ति के ही रूप हैं। तैत्तिरीय आरण्यक में भी भगवती का स्वरूप विद्युत् सदृश्य बताया है। गीता में संजय कहते हैं—

**दिवि सूर्य सहस्रस्य भवेद्युगपदुत्थिता।**
**यदि भाः सदृशी सा स्याद्भासस्तस्य महात्मनः॥**

अध्याय ११,१२

**मंत्रार्थ**—प्रथम श्लोक मङ्गलाचरण का है। इसमें आचार्य श्री ने बाला त्रिपुर सुन्दरी तथा श्री विद्या के मंत्रों का भी संकेत किया है जिनका उद्धार इस प्रकार किया जा सकता है—

भवानी=विश्व जननी=महायोनी=वाग्भव बीज
सुख वपुः=आनन्द=काम बीज
परा=शक्ति बीज
बाला=वाग्भव, काम, परा

इसी प्रकार श्री विद्या के कादि, हादि तथा सादि रूपों का इस श्लोक में संकेत है। ये मंत्र गुरु-मुख से ही जानने चाहियें, इसलिये हम यहाँ इनका उद्धार नहीं दे रहे हैं। यह सम्प्रदाय भेद एवं गोप्य है। इस श्लोक से पञ्चाक्षरी शक्ति तथा शिव-मन्त्र का भी उद्धार होता है—

वन्दे=नमः
भवमहिषि=शिवा

सञ्चित सुख वपु से=य का उद्धार किया जा सकता है।

जैसा कि मन्त्राभिधान में कहा है, य के निम्नलिखित अर्थ होते हैं या इन शब्दों से य लिया जा सकता है।

यो वाणी वसुधा वायुर्व्विकृतिः पुरुषोत्तमः ।
युगान्त श्वसनः शीघ्रं धूम्रार्च्चिः प्राणिसेवक ॥१३९॥
शङ्खभ्रमो जटी लोला वायुवेगी यशस्करः ।
संङ्कर्षणः क्षपा वालो हृदयं कपिला प्रभा ॥१४०॥
आग्नेयी व्यापकस्त्यागो होमो यानं प्रमा सुखम् ।
चण्डः सर्व्वेश्वरी धूमश्चामुण्डा सुमुखेश्वरी ॥१४१॥
त्वगात्मा मलयो माता हंसिनी भृङ्गनायकः ।
चेतना शोषको मीनो धनिष्ठानङ्ग वेदिनी ॥१४२॥

इस प्रकार वन्दे भवमहिषि पद से शक्ति पञ्चाक्षरी मंत्र का उद्धार होता है जो कि नमः शिवायै बनता है एवं वन्दे=नमः, भवमहिषि=शिवा, सच्चित्सुखवपुः=य,—इससे 'नमः शिवाय' पञ्चाक्षर शिव-मंत्र का उद्धार होता है ।

### कादि एवं हादि विद्या का उद्धार

| हादि प्रथम कूट | कादि प्रथम कूट |
|---|---|
| भव — ह (शिव) | भव=क |
| महिषि—स (शक्ति) | वन्दे का=ऐ |
| सुख — क | परा=ई |
| लहरीम्=ल+हरीम्=ह्लीं | अथवा सुख=कामकला=ई |
| | लहरीम्=ल+ह्लीं |

**द्वितीय कूट**

भव = ह
महिषि =स
सुख =क

पराकारा के परं पद से=ह या अमृत=चन्द्र=ह
लहरीम्=ल+ह्लीं

तृतीय कूट

भवमहिषि=स

सुख=क

लहरीम्=ल+ह्रीं

इस प्रथम श्लोक में आचार्यश्री ने प्रतिपादित किया है कि श्री विद्या (अर्थात् भगवती श्री कुण्डलिनी शक्ति) की उपासना ही सर्वश्रेष्ठ है, वही भोग तथा मोक्ष की देने वाली है, वही जगत् का कारण है तथा वही परब्रह्म है। साथ ही साथ यह भी बताया है कि भगवती का वास-स्थान यह शरीर ही है, इसलिये अन्तर्याग के द्वारा ही उसे जाना जा सकता है। 'सुधासिन्धोरन्तर्वसति' पद द्वारा आचार्य यह भी प्रतिपादित कर रहे हैं कि समयाचार के अनुसार भगवती का मन्दिर सहस्रार ही है और वहीं उसका वास है तथा वहीं उसकी पूजा होनी चाहिये। यहां नीचे के चक्रों में पूजन का निषेध भी समझ लेना चाहिये। अर्थात् साधक को कुण्डलिनी शक्ति को मूलाधार से उठाकर सहस्रार में ले जाकर वहीं उसका ध्यान करना चाहिये और उस ध्यान के प्रकार के लिये आचार्य कहते हैं—'वासरमयीम्।'

[ २ ]

**मनस्तत्त्वं जित्वा नयनमथ नासाग्रघटितं**
**पुनर्व्यावृत्ताक्षः *स्वयमपि यदा पश्यति पराम्।**
**तदानीमेवास्य स्फुरति बहिरन्तर्भगवती।**
**परानन्दाकारा परशिवपरा काचिदपरा ॥२**

*पाठान्तर—पुनर्व्यावृत्ताक्षिद्वयमपि।

**सरल अर्थ**—जो योगी मन तत्व को जीत कर अर्थात् मन को एकाग्र करके नयनों अर्थात् दृष्टि को नासाग्र भाग पर स्थिर करके फिर अपनी दृष्टि को अन्तर्मुखी करके जब तुझ परा देवी को देखता है, तब ही उसमें बाहर एवं भीतर भगवती का स्फुरण होता है। वह भगवती परानन्दाकारा (परानन्द आकार वाली), परशिव से भी परे अथवा परशिव-परायण और किंचित् अपरा अर्थात् ऐहिक भी है।

**व्याख्या**—अब श्लोक २ से ६ तक आचार्य कुण्डलिनी शक्ति के जागरण एवं उसके आरोहण का वर्णन करते हैं। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, आचार्य श्री ने इस ग्रन्थ में समयाचार का प्रतिपादन किया है। समयाचार भावना-प्रधान मार्ग है एवं इसमें ध्यान ही मुख्य है। आचार्य ने इस श्लोक में ध्यान का महत्व बताया है। ध्यान की महत्ता बताते हुए इस श्लोक में ध्यान के द्वारा कुण्डलिनी शक्ति का जागरण बता रहे हैं। कुण्डलिनी-शक्ति के जागरण के लिए आचार्य यहां तीन मुख्य बातें बताते हैं—

(१) मनस्तत्वं जित्वा

(२) नासाग्र घटितं

(३) पुनर्व्यावृत्ताक्षः स्वयमपि यदा पश्यति पराम

या

पुनर्व्यावृताक्षिद्वयमपि यदा पश्यति पराम
अर्थात् कुण्डलिनी शक्ति का ध्यान

**मनस्तत्वं जित्वा**—मन तत्व को जीतकर अर्थात् मन को वश में कर के या चित्त की वृत्तियों का निरोध करके। सब इन्द्रियाँ मन के आधीन हैं, इसलिये मन के वश में आ जाने

पर इन्द्रियाँ स्वयमेव वशीभूत हो जाती हैं। योग का पहला चरण इन्द्रियों को वश में करना ही है। इन्द्रिय-लोलुप मनुष्य भला क्या योग-साधन कर सकता है? यदि इन्द्रियों को जीतना है तो हमें मन को वश में करना होगा। मनोनिग्रह के द्वारा ही ध्यान पर आरूढ़ हुआ जा सकता है। इसलिये उपासना अथवा योग का सबसे पहला चरण होगा—इन्द्रिय-निग्रह, और इसके लिए आवश्यक है—मन का वश में होना।

मन को जीतने से पहले शरीर को वश में करना आवश्यक है क्योंकि शरीर दो प्रकार के हैं—अपक्व और परिपक्व। योग-साधन से रहित शरीर कच्चा कहलाता है। योग-साधन के द्वारा शरीर परिपक्व होता है। परिपक्व शरीर में ही भगवती श्री कुण्डलिनी शक्ति का जागरण हो सकता है, क्योंकि योगाग्नि द्वारा तपाया हुआ शरीर जड़ता एवं शोक रहित होता है। यह जड़ पार्थिव अपक्व शरीर ही दुःखों का कारण है। ऐसे शरीर से धारणा, ध्यान करोगे तो इन्द्रियों के अवश होने से स्थिर नहीं बैठ सकोगे, हाथ-पैर दुखने लगेंगे, चित्त में विक्षेप होगा और इसलिए ब्रह्म के ध्यान का वहीं विसर्जन करना पड़ेगा। यदि ज्ञान से, विचार द्वारा दुःख के अनुभव से इन्द्रियों एवं मन को हटा अथवा रोक भी लोगे तो बहुत-सी दूसरी बाधायें आयेंगी जैसे कि शीत, उष्ण, सुख-दुःख आदि मानसिक बाधायें और इनसे अस्थिर हो जाओगे। जैसा कि योग-शिखोपनिषत् प्रथम अध्याय में कहा है

विना देहेन योगेन न मोक्षं लभते विधे।
अपक्वाः परिपक्वाश्च देहिनो द्विविधाः स्मृताः ॥२५॥
अपक्वा योगहीनास्तु पक्वा योगेन देहिनः।
सर्वो योगाग्निना देहो ह्यजडः शोकवर्जितः ॥२६॥

जडस्तु पार्थिवो ज्ञेयो ह्यपक्वो दुःखदो भवेत् ।
ध्यानस्थोऽसौ तथाप्येवमिन्द्रियैर्विवशो भवेत् ॥२७॥

तानि गाढं नियम्यापि तथाप्यन्यैः प्रबाध्यते ।
शीतोष्णसुखदुःखाद्यैर्व्याधिभिर्मानसैस्तथा ॥२८॥

इसलिए सर्वप्रथम योग-साधन द्वारा शरीर को परिपक्व करना आवश्यक है। जब योग के द्वारा शरीर परिपक्व हो जायेगा तभी मन वश में होगा और आगे कहे अनुसार ध्यान सम्भव होगा। इस विषय में भगवान् स्वयं गीता अध्याय ६ में कहते हैं—

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम् ।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते ॥३५॥

असंयतात्मना योगो दुष्प्राप इति मे मतिः ।
वश्यात्मना तु यतता शक्योऽवाप्तुमुपायतः ॥३६॥

इस तरह आचार्य ने यहां 'मनस्तत्त्वं जित्वा' के द्वारा कुण्डलिनी-शक्ति-जागरण के पूर्व साधन की ओर संकेत किया है। कुण्डलिनी शक्ति का जागरण तभी संभव है जब योगाभ्यास एवं उपासना द्वारा मल-पाक हो चुका हो क्योंकि तभी ईश्वरीय अनुग्रह से शक्तिपात होगा और कुण्डलिनी शक्ति का जागरण होगा। शक्तिपात के विषय में अधिक जानकारी के लिए पाठक मेरे गुरुदेव परम पूज्य श्री स्वामी विष्णुतीर्थ जी महाराज विरचित ग्रन्थों का अवलोकन करें। यह विषय तंत्रों में विस्तारपूर्वक दिया हुआ है। आचार्य अभिनव गुप्त ने अपने तंत्रालोक में इस विषय का विशद वर्णन किया है।

योग की आवश्यकता के विषय में योगी श्री पूर्णानन्द परमहंस (पूर्णानन्दनाथ) षट्चक्र निरूपण (श्री तत्व चिन्तामणि के षष्ठ प्रकाश) में कहते हैं—

**हूङ्कारेणैव देवीं यमनियमसमाभ्यासशीलः सुशीलो**
**ज्ञात्वा श्री नाथ वक्त्रात् क्रममिति च महामोक्ष वर्त्मप्रकाशम् ।**
**ब्रह्मद्वारस्य मध्ये विरचयति सतां शुद्धबुद्धि स्वभावो**
**भित्वा तल्लिङ्गरूपं पवनदहन योरोक्रमेणैव गुप्तम् ॥५१**

**नासाग्रघटितं**—यहाँ आचार्य पहिले बाह्य ध्यान का आदेश देते हैं। ऊपर बताये अनुसार योग-साधन करने के पश्चात् योगी अपनी दृष्टि को नाक से अग्र भाग पर स्थिर करे। (नासाग्र भाग के बारे में विद्वानों तथा महात्माओं में कुछ मत-भेद है। कुछ लोग नासिका के मूल भाग को नासाग्र मानते हैं, अग्र से वे सिर की ओर लेते हैं तथा दूसरे लोग नाक की नोक को अग्रभाग मानते हैं। इस तरह यहां नासाग्र से दो प्रकार का ध्यान होता है—पहला नाक के मूल भाग अर्थात् भ्रूमध्य में दृष्टि को स्थिर करना जो शांभवी मुद्रा को बताता है तथा दूसरा नाक की नोक पर दृष्टि स्थिर करना)। भगवान् गीता में यही क्रम बताते हैं—

योगी युञ्जीत सततमात्मानं रहसि स्थितः ।
एकाकी यतचित्तात्मा निराशीर परिग्रह ॥
शुचौ देशे प्रतिष्ठाय स्थिर मासनमात्मनः ।
नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिन कुशोत्तरम् ॥
तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः ।
उपविश्यासने युञ्ज्याद्योगमात्म विशुद्धये ॥

**सम काय शिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिर: ।**
**संप्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वदिशश्चानवलोकयन् ॥**
—अध्याय ६,१०-११-१२-१३

ध्यान दो प्रकार का होता है—बाह्य एवं अन्तर। यहाँ पहले बाह्य ध्यान बताया गया है। बाह्य ध्यान के विषय में अद्वयतारकोपनिषत् कहता है—

**'नासिकाग्रे चतुर्भि: षडभिरष्टभिर्दशभिर्द्वादशभि: क्रमादङ्गुलान्ते नील द्युति श्यामत्व सदृग्रक्त भङ्गीस्फुरत पीतशुक्ल वर्णद्वयोपेत व्योम यदि पश्यति सतु योगी भवति।'**

इस विषय में मण्डल ब्राह्मणोपनिषत् में कहा है—

**'बहिर्लक्ष्यं तु नासाग्रे चतु: षडष्टदशद्वादशाङ्गुलीभि: क्रमान्नील द्युति श्यामत्व सदृग्रक्त भङ्गीस्फुरत्पीत वर्ण द्वयोपेतं व्योमत्वं पश्यति स तु योगी चलन दृष्टचा व्योम भाग वीक्षितु: पुरुषस्य दृष्टचग्रे ज्योतिर्मयूखा वर्तन्ते।'**

त्रिशिखि ब्राह्मणोपनिषत् में बाह्य ध्यान के विषय में लिखा है—

**नासाग्र न्यस्तनयनो जिह्वां कृत्वा च तालुनि ।**
**दन्तैर्दन्तान संस्पृश्य ऊर्ध्वकाय: समाहित: ॥१४५॥**
**संयमेच्चेन्द्रियग्राममात्म बुद्धचा विशुद्धया ।**
**चिन्तनं वासुदेवस्य परस्य परमात्मन: ॥१४६॥**
**स्वरूप व्याप्त रूपस्य ध्यानं कैवल्य सिद्धिदम् ।**
**याममात्रं वासुदेवं चिन्तयेत्कुम्भकेन य: ॥१४७॥**
**सप्तजन्मार्जितं पापं तस्य नश्यति योगिन: ।**
**नाभि कन्दात्समारभ्य यावद्हृदयगोचरम् ॥१४८॥**

वृहद्योगि याज्ञवल्क्य स्मृति के नवें अध्याय के श्लोक १८७, १८८, १८९ तथा १९० में भी इस विषय का सुन्दर वर्णन है। श्रीमद्भागवत के एकादश स्कन्ध में भगवान् कहते हैं—

**संम आसन आसीनः समकायो यथा सुखम् ।**
**हस्तावुत्सङ्ग आधाय स्वनासाग्र कृतेक्षणः ।।२२।।**

**पुनर्व्यावृताक्षः स्वयमपि यदा पश्यति पराम् (पुनर्व्या-वृत्ताक्षिद्वयमपि यदा पश्यति पराम्)**—पुनः व्यावृत अक्ष स्वय-मपि (अक्षि द्वयम् अपि) यदा पश्यति पराम् ।

पुनः=फिर, व्यावृत=पलट कर या घुमाकर, अक्ष=नेत्र-दृष्टि, स्वयमपि=स्वयं ही, या द्वयम् अपि=दोनों को, यदि पश्यति=देखता है, पराम=भगवती कुण्डलिनी शक्ति ।

पहले बाह्य नासाग्र पर ध्यान करने के बाद अब आचार्य बाह्य ध्यान के बाद का वर्णन करते हैं अर्थात् अन्तर ध्यान के बारे में बता रहे हैं कि योगी फिर अर्थात् नासाग्र पर ध्यान सिद्ध हो जाने पर अपने नेत्रों को पलट कर अर्थात् अपनी दृष्टि को अन्तर्मुखी करके अथवा शाम्भवी मुद्रा लगाकर (नेत्रों को पलट कर का अर्थ शाम्भवी मुद्रा भी किया जा सकता है) उस परा शक्ति को देखे अर्थात् [आचार्य (गुरु) द्वारा बताये गये प्रकार से] उसका ध्यान करे। यहां आचार्य ध्यान की महत्ता बता रहे हैं क्योंकि इस प्रकार के ध्यान के द्वारा ही कुण्डलिनी शक्ति का जागरण होगा। श्वेता-श्वतर उपनिषद् अध्याय १ में कहता है कि पूर्वकाल में ऋषियों ने उस महा शक्ति को ध्यान के द्वारा ही देखा था—

**ते ध्यान योगानुगता अपश्यन्**
**देवात्मशक्ति स्वगुणैर्निगूढाम् ।**
**यः कारणानि निखिलानि तानि**
**कालात्मयुक्ता न्याधितिष्ठत्येका ।।३।।**

ध्यान के विषय में बृहद्योगी याज्ञवल्क्य स्मृति के अध्याय ६ में कहा है—

ध्यानेन सदृशं नास्ति शोधनं पाप कर्मणाम् ।
श्वपाकेष्वपि भुञ्जानो ध्यायी नव तु लिप्यते ॥१७८॥
ध्यानमेव परं ब्रह्म ध्यानमेव परं तपः ॥१७६॥
ध्यानमेव परं शौचं तद्ध्यान परमं स्मृतम् ।
सर्वपाप प्रसक्तोऽपि ध्यायेन्निमिषमच्यतम् ॥१८०॥

श्रुति भी कहती है—

चित्स्वरूपोऽहमिति सदा भावयन्त्सम्यङ्ङ्नि
मीलिताक्षः किञ्चिदुन्मीलिताक्षो ।
वान्तर्दृष्ट्या भ्रूदहरादूपरि सच्चिदानन्द तेजः
कूट रूपं परं ब्रह्मावलोकयस्तद्रूपो भवति ॥२॥

देह मध्ये ब्रह्मनाड़ी सुषुम्ना सूर्यरूपिणी पूर्ण चन्द्राभा वर्तते। सा तु मूलाधारादारभ्य ब्रह्मरन्ध्र गामिनी भवति। तन्मध्ये तडित्कोटि समानकान्त्या मृणालसूत्रवत्सूक्ष्माङ्गी कुण्डलिनीति प्रसिद्धास्ति। तां दृष्ट्वा मनसैव नरः सर्वपाप-विनाशद्वारा मुक्तो भवति। —अद्वयतारकोपनिषत्

भ्रूमध्ये सच्चिदानन्द तेजः कूट रूपं तारकं ब्रह्म। तदुपाय लक्ष्य त्रयावलोकनम्। मूलाधारादारभ्य ब्रह्मरन्ध्र पर्यन्तं सुषुम्ना सूर्याभा। मृणालतन्तु सूक्ष्मा कुण्डलिनी। तत्र तमो निवृत्तिः। तद्दर्शनात् सर्वपाप निवृत्तिः।

—मण्डल ब्राह्मणोपनिषत्, प्रथम ब्राह्मण

घेरण्ड संहिता षष्ठोपदेश में ध्यान के विषय का सुन्दर वर्णन किया है—

स्थूलं ज्योतिस्तथा सूक्ष्मं ध्यानस्य त्रिविधं विदुः ।
स्थूलं मूर्तिमयं प्रोक्तं ज्योतिस्तेजोमयं तथा ।
सूक्ष्मं बिन्दुमयं ब्रह्म कुण्डली पर देवता ॥१॥

हम यहाँ ग्रन्थ-विस्तार-भय से स्थूल ध्यान का वर्णन नहीं दे रहे हैं, परन्तु ज्योति तथा सूक्ष्म ध्यान का वर्णन नीचे दिया है—

कथितं स्थूल ध्यानं तु तेजो ध्यानं शृणुष्व मे ।
यद्ध्यानेन योगसिद्धिरात्म प्रत्यक्षमेव च ॥१५॥
मूलाधारे कुण्डलिनी भुजगाकार रूपिणी ।
जीवात्मा तिष्ठति तत्र प्रदीप कलिकाकृतिः ।
ध्यायेत्तेजोमयं ब्रह्म तेजो ध्यानं परा परम् ॥१६॥
नाभिमूले स्थितं सूर्यमण्डलं वन्हि संयुतम् ।
ध्यायेत्तेजो महद्व्याप्तं तेजो ध्यानं तदेव हि ॥१७॥

प्रकारान्तरम्—

भ्रूमध्ये मन ऊर्ध्वे च यत्तेजः प्रणवात्मकम् ।
ध्यायेज्ज्वालावलीयुक्तं तेजो ध्यानं तदेव हि ॥१८॥

अथ सूक्ष्म ध्यानं—

तेजो ध्यानं श्रुतं चण्ड सूक्ष्म ध्यानं शृणुष्व मे ।
बहुभाग्य वशाद् यस्य कुण्डली जाग्रती भवेत् ॥१९॥
आत्मना सहयोगेन नेत्र रन्ध्राद्विनिर्गता ।
विहरेद राज मार्गं च चञ्चलत्वान दृश्यते ॥२०॥
शाम्भवी मुद्रया योगी ध्यान योगेन सिध्यति ।
सूक्ष्मध्यानमिदं गोप्यं देवानामपि दुर्लभम् ॥२१॥
स्थूल ध्यानाच्छतगुणं तेजोध्यानं प्रचक्षते ।
तेजोध्यानाल्लक्षगुणं सूक्ष्मं ध्यानं परात्परम् ॥२२॥

इस श्लोक में प्रथम दो पंक्तियों में आचार्य श्री ने कुण्डलिनी-जागरण की विधि बताई है। यहां हम यह भी कह सकते हैं कि कुण्डलिनी शक्ति का जागरण तब होता है जब योगी अष्टांग योग की सातवीं भूमिका पर आरूढ़ होता है और उस के जागरण का फल समाधि है जो आठवीं भूमिका है—

१ से ५ तक यम, नियम, आसन, प्राणायाम तथा प्रत्याहार=**मनोनिग्रह, नाड़ी एवं शरीर शुद्धि।**

६—धारणा=**नासाग्रघटितं**

७—ध्यान =**कुण्डलिनी शक्ति का**—'पुनर्व्यावृताक्षः स्वयमपि यदा पश्यति पराम्।'

८—समाधि=कुण्डलिनी जागरण का फल।

तीसरी पंक्ति में आचार्य कुण्डलिनी शक्ति के स्फुरण के दो प्रकार बताते हैं—वहिर एवं अन्तर। अन्तर स्फुरण अर्थात् साधक की आनन्दानुभूति एवं दिव्य अनुभव जो कुण्डलिनी शक्ति के जागरण के पश्चात् होते हैं। कुण्डलिनी शक्ति का जागरण होने पर साधक दिव्य आनन्द की अनुभूति करता है, वह आत्मानन्द को मस्ती में मस्त हो जाता है एवं उसमें दिव्य भावों का उदय होने लगता है। ये सब स्वानुभवगम्य हैं। साधक स्वयं ही इनका अनुभव करता है। स्वानुभवगम्य होने से यह अन्तर स्फुरण है, किन्तु इसके साथ ही साथ योगी की शारीरिक कान्ति में भी वृद्धि हो जाती है, उसकी वाणी मधुर एवं कवितामय हो जाती है और साधक को ऋद्धि-सिद्धि आदि की प्राप्ति होती है। श्री रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द, स्वामी रामतीर्थ, श्री रमण महर्षि आदि महापुरुषों के जीवन में ऐसे अनुभव आये हैं। यह भगवती का बाह्य स्फुरण है जो कि दूसरों को दृष्टिगोचर होता है। बाह्य स्फुरण से यहां

दूसरे व्यक्तियों में शक्तिपात करने का सामर्थ्य भी लिया जा सकता है।

यदि किसी स्थान को कोई महारानी अपना आवासगृह बना ले तो उसमें बाहर एवं भीतर सब ओर सजावट की जाती है और आवासगृह को देखने वाले उसकी केवल बाह्य सजावट से ही अनुमान लगा सकते हैं कि यह किसी महारानी का आवासगृह है। रनिवास के भीतर की सजावट तो वहां रहने वाले भृत्य आदि ही देख सकते हैं। साधक का शरीर ही राजराजेश्वरी परम भट्टारिका श्री भगवती जगन्नायिका परा शक्ति कुण्डलिनी का आवासगृह है। जब एक साधारण महारानी के लिए निर्मित आवासगृह में बाह्याभ्यन्तर सजावट की जाती है तो फिर जहाँ कोटि-कोटि ब्रह्माण्डनायिका ललिताम्बिका स्वयं केलि करती हों, भला उस स्थान की सजावट तथा सुन्दरता का क्या कहना ? उसकी तो कल्पना भी नहीं की जा सकती। उसकी आन्तरिक सुन्दरता तथा सजावट तो वहाँ सेवा करने वाला भृत्य अर्थात् साधक का मन ही देख या अनुभव कर सकता है। यों भी कहा जा सकता है कि कुण्डलिनी शक्ति जागरण होने पर साधक को बाह्याभ्यन्तर दोनों प्रकार के आनन्दों की प्राप्ति होती है अर्थात् वह भोग और मोक्ष दोनों को प्राप्त करता है। शास्त्रों ने कहा है कि श्री विद्या की उपासना भुक्ति-मुक्ति दोनों की देने वाली है—

**यत्रास्ति भोगो न च तत्र मोक्षो, यत्रास्ति मोक्षो न च तत्र भोगः।**
**श्री सुन्दरी सेवन तत्पराणां भोगश्च मोक्षश्च करस्थ एव॥**

दुर्गा सप्तशती में भी कहा है

**आराधिता सैव नृणां भोग स्वर्गापवर्गदा।** —१३।५

भगवती कुण्डलिनी शक्ति के जागरण की विधि एवं उसके

जागरण के विषय पर मेरे परम पूज्य परम गुरुदेव श्री योगेन्द्र विज्ञानी ने अपने 'महायोग विज्ञान' में अच्छा प्रकाश डाला है। मेरे परम पूज्य गुरुदेव स्वामी श्री विष्णुतीर्थ जी महाराज ने भी अपने ग्रन्थों में,–विशेषकर देवात्मशक्ति (अंग्रेजी में डिवाइन पावर) तथा शक्तिपात में,—इस विषय का सुन्दर वर्णन किया है। आचार्य श्री ज्ञानेश्वर ने अपने ज्ञानेश्वरी नामक गीता-भाष्य में अत्यन्त सुन्दर वर्णन किया है जिसको कि हम यहाँ लिखने का लोभ संवरण नहीं कर पाये। इस वर्णन में श्री ज्ञानेश्वर जी महाराज ने कुण्डलिनी शक्ति के जागरण की विधि, उसके जागने पर साधक को विविध अनुभव आदि सब विषयों का मनोहारी वर्णन किया है। आचार्य श्री ज्ञानदेव कहते हैं—

'अच्छा, अब मैं तुम्हारे सामने सब बातों का सांगोपांग वर्णन करता हूं, परन्तु इन बातों का वास्तविक उपयोग तभी हो सकता है जब इनका अनुभव किया जाये। योगाभ्यास के लिए सबसे पहले एक उपयुक्त स्थान देखना चाहिये। (स्थान का वर्णन हम यहाँ नहीं दे रहे हैं, यद्यपि यह बड़ा सुन्दर है)।

'हे अर्जुन ! ऐसा स्थान बहुत ही सावधान होकर ढूँढ़ना चाहिये और तब वहां कोई मठ या शिव-मन्दिर देखना चाहिये। इन दोनों में से जो अपने को अच्छा जान पड़े, वही अपने लिए चुन लेना चाहिये और वहां बिल्कुल एकान्त में जा बैठना चाहिये। अपने लिए कौन-सा स्थान उपयुक्त होगा, यह देखने की रीति यह है कि पहले इस बात का अनुभव कर लेना चाहिये कि हमारा मन किस स्थान पर शान्त और निश्चल रहेगा, और तब उसी के अनुरूप स्थान चुनकर ऊपर बतलाये प्रकार से वहाँ आसन जमाना चाहिये। सबसे ऊपर

स्वच्छ मृग-चर्म होना चाहिये, बीच में अर्थात् उस मृग-चर्म के नीचे धोये हुए निर्मल वस्त्र की तह होनी चाहिये और उसके नीचे अर्थात् बिल्कुल जमीन पर सरल और अखण्ड दर्भांकुर बिछे हुए होने चाहिए। ये दर्भांकुर बहुत ही कोमल हों और बराबर बिछे हुए हों, एक-दूसरे के साथ खूब अच्छी तरह मिले हुए हों। इन सब बातों का ध्यान उन्हें बिछाते समय ही पूरी तरह से रखना चाहिये। यदि यह आसन बहुत ऊँचा होगा तो शरीर हिले-डुलेगा और यदि बहुत नीचा होगा तो भूमि के साथ स्पर्श होने की संभावना रहेगी। इसीलिये इसकी ऊँचाई ठीक और सुभीते की होनी चाहिये। परन्तु इन सब बातों की बहुत अधिक चर्चा करने की आवश्यकता नहीं। इन सब बातों का भावार्थ है कि आसन अच्छा और सुख देने वाला होना चाहिये।

'फिर उस आसन पर बैठकर चित्त को एकाग्र करना चाहिये और सद्गुरु का स्मरण करना चाहिये। फिर अन्दर और बाहर दोनों ओर सात्विक वृत्ति से ओतप्रोत भरकर बहुत सम्मान और आदरपूर्वक तब तक सद्गुरु का स्मरण करते रहना चाहिए जब तक अहंकारी कठोरता बिलकुल नष्ट न हो जाय, विषयों की पूरी-पूरी विस्मृति न हो जाय, इन्द्रियों की चंचलता बिलकुल न रुक जाय और मन एकाग्र होकर हृदय में प्रतिबिम्बित न हो जाय और इस प्रकार की स्वाभाविक एकता की अवस्था पूरी तरह से प्राप्त न हो जाय। फिर इसी आत्म-बोध वाली अवस्था में आसन पर बैठे रहना चाहिए। ऐसी अवस्था में यह अनुभव होने लगेगा कि शरीर आप से आप संभलता हुआ ठिकाने आ रहा है और शरीर में की वायु एक स्थान पर एकत्र हो रही है। इस अवस्था में बैठते ही प्रवृत्ति

पराङ्गमुख हो जाती है, चित्त की समाधि अर्थात् एकाग्र सम-स्थिति समीप आ जाती है और योगाभ्यास का साधन होता है।

'अब यह बतलाते हैं कि उस समय मुद्रा की अर्थात् कमर से ऊपर वाले भाग की स्थिति कैसी होनी चाहिए ? पिंडली को जाँघ से मिलाकर पैर के तलुए इस प्रकार टेढ़े करने चाहिएँ कि वे ऊपर की ओर हो जायें और तब उन्हें गुदस्थान के मूल में रख कर जोर से दबाना चाहिए। दाहिने तलुए से गुदस्थान की सींवन का ठीक बीच वाला भाग दबाना चाहिए। इससे बायाँ तलुआ सहज में ठीक ऊपर जमकर बैठ जायेगा। गुदा और वृषण के बीच में चार अंगुल का अन्तर होता है। उसमें से यदि डेढ़-डेढ़ अंगुल दोनों ओर छोड़ दिया जाय तो बीच में एक अंगुल बाकी रह जाता है। एड़ी का पिछला भाग वहीं रखकर और सारे शरीर का भार खूब तौल कर उस स्थान को अच्छी तरह दबाना चाहिये। फिर पीठ के नीचे वाला भाग ऐसे हलकेपन से ऊपर उठाना चाहिए जिसमें यह भी पता न चले कि ऊपर का शरीर उठाया गया है या नहीं और दोनों घुटने भी उसी प्रकार संभालकर रखने चाहिएँ। हे अर्जुन ! ऐसा करने से सारे शरीर का भार एड़ी के केवल अगले भाग पर पड़ेगा। हे पार्थ ! यह मूल बन्ध नामक आसन का वर्णन है और इसी का दूसरा नाम वज्रासन भी है। इस प्रकार जब गुदा और वृषण के बीचों-बीच रहने वाले आधार चक्र पर ऊपर के शरीर का सारा भार पड़ता है और शरीर के नीचे का भाग दबता है, तब आंतों में संचार करने वाला अपान वायु उलटे शरीर के भीतरी भाग की ओर अर्थात् पीछे की ओर हटने लगता है।

'फिर हाथ की हथेलियाँ द्रोणाकार होकर आपसे आप बांयें पैर पर आकर टिक जाती हैं और जान पड़ता है कि कन्धे कुछ

ऊँचे हो गये हैं। शरीर-दण्ड ऊँचा या सीधा खड़ा रहता है और उसके बीच में मस्तक घुसा या डूबा हुआ-सा मालूम होता है और आँखों में आप से आप झपकी आने लगती है। आँखों की ऊपर वाली पलकें तो बन्द हो जाती हैं, पर नीचे वाली पलकें खुली रहती हैं। इससे आँखें आधी खुली रहती हैं। फिर दृष्टि अन्दर की ओर बढ़कर जरा-सी बाहर की ओर आती है और नाक के ठीक कोने या अगले भाग पर आकर जम जाती है। इस प्रकार दृष्टि अन्दर की ओर संकुचित हो जाने के कारण फिर बाहर नहीं जा सकती और तब उस अर्द्ध-विकसित दृष्टि को नाक के अगले भाग पर ही स्थिर होना पड़ता है। फिर किसी दिशा में दृष्टिपात करने अथवा किसी का आकार या रूप देखने की इच्छा आपसे आप नष्ट हो जाती है। सिर दबकर नीचे बैठ जाता है और ठोड़ी गले के नीचे वाले गड्ढे में बैठ जाती है और सिर अच्छी तरह छाती के साथ सट जाता है। इससे कण्ठ नाली भी उसी में मिलकर फँस जाती है। इसी प्रकार के बन्ध को जालन्धर बन्ध कहते हैं। नाभि ऊपर उठ आती है और पेट अन्दर धँसकर सपाट हो जाता है, परन्तु हृदय कोश विस्तृत हो जाता है। इस प्रकार लिंग-मूल के ऊपर और नाभि-स्थल के नीचे जो बन्ध हो जाता है, उसे उड्डीयान बन्ध कहते हैं। इस प्रकार की बन्ध-मुद्रा से शरीर के बाहरी अंगों पर योगाभ्यास की छाप पड़ती है और शरीर के अन्दर का वह आधार नष्ट हो जाता है जिसमें मनोवृत्तियाँ रहती हैं। कल्पना बेकाम हो जाती है और प्रवृत्ति शान्त हो जाती है। शरीर के लेखे मन आपसे आप नहीं के समान हो जाता है। फिर इस बात की कुछ सुध नहीं रह जाती कि भूख क्या हो गई और नींद कहाँ चली गई ?

'हे अर्जुन ! अभी मैंने तुम्हें जो मूलबन्ध या वज्रासन बतलाया है, उसके द्वारा पूरी तरह से बंध जाने के कारण अपान वायु शरीर में पीछे की ओर चलती है और दबाव पड़ने के कारण फूलने लगती है और नाभि-स्थान में रहने वाले मणिपूर नामक चक्र को बीच-बीच में धक्के देती है। इसके बाद जब वह आंधी शान्त हो जाती है, तब वह सारा शरीर रूपी घर ढूँढ़ डालती है और बाल्यावस्था से लेकर अब तक जितना मल अन्दर जमा रहता है, वह सब शरीर से बाहर निकाल देती है। अपान वायु की यह लहर शरीर के अन्दर तो समा ही नहीं सकती, इसलिये वह कोठों में घुस कर कफ और पित्त को आधार-स्थल से निकाल देती है। फिर यह अपान वायु रुधिर आदि सातों धातुओं के समुद्र को उलट देती है, मेद के पर्वतों को चकनाचूर कर देती है और हड्डियों के अन्दर बैठी मज्जा तक को बाहर निकाल देती है। वायु-मार्ग की नाली को खुलासा करती है और सब अवयवों को शिथिल कर देती है। इस प्रकार अपने इन लक्षणों से यह अपान वायु योग की साधना करने वाले नवसिखिए लोगों को डरा देती है, परन्तु योग की साधना करने वालों को इन सब बातों से बिलकुल डरना नहीं चाहिए। कारण यह है कि यद्यपि यह अपान वायु अपने इस प्रकार के व्यापारों से कुछ व्याधि उत्पन्न करती है, परन्तु साथ-ही-साथ वह उस व्याधि का परिहार भी करती चलती है। शरीर में कफ और पित्त आदि के जो जलीय अंश हैं और माँस-मज्जा आदि जो पृथ्वी के अंश हैं, वह उन सबको एक में मिला देती है।

'इसी बीच में, हे अर्जुन ! आसन के ताप के कारण कुण्डलिनी नाम की शक्ति जागृत होती है। जिस प्रकार नागिन

का कुंकुम के समान लाल बच्चा कुण्डली बनाकर बैठता है, उसी प्रकार यह कुण्डलिनी नामक छोटी नाड़ी साढ़े तीन फेरे की कुण्डली मारकर और सिर नीचे करके नागिन की तरह सोई रहती है। विद्युत् के बने हुए कंकरण या अग्नि की ज्वाला की रेखा या सोने के बढ़िया घोटे हुए पासे की तरह यह कुण्डलिनी नाभि-स्थान की छोटी-सी जगह में अच्छी तरह बंधनों से जकड़ी हुई पड़ी रहती है। पर जब उस पर वज्रासन का दबाव पड़ता है, तब वह जाग उठती है। फिर जिस प्रकार कोई तारा टूट पड़ता है अथवा सूर्य का आसन छूट जाता है अथवा स्वयं तेज का बीज प्रस्फुटित होने पर उसमें से कोमल गाभ निकलता है, उसी प्रकार यह कुण्डलिनी अपना घेरा छोड़ देती है और मानों अंगड़ाई लेती हुई नाभिकन्द पर खड़ी हो जाती है। स्वभावतः वह बहुत दिनों की भूखी रहती है, तिस पर वह दबाकर जगाई जाती है, इसलिये वह अपना मुख बड़े आवेश से खोलकर ऊपर उठाती है। उसी समय उसे अपने सामने वह अपान वायु मिल जाती है जो हृदय कोश के तल में आकर एकत्र हुई रहती है और तब वह उस समस्त वायु को अपने अधिकार में कर लेती है। अपने मुख की ज्वाला से वह उसे ऊपर, नीचे और चारों ओर से घेर लेती है और माँस के कौर खाने लगती है और अन्त में हृदय के भी एक दो कौर वह चट कर जाती है। फिर वह पैरों के तलुओं और हाथों की हथेलियों की भी खबर लेती है और तब उसके ऊपर के अंश पर भी हाथ साफ करती है। इस प्रकार वह शरीर की प्रत्येक संधि और प्रत्येक अंग की तलाशी लिये बिना नहीं रहती। वह नीचे के भागों को भी नहीं छोड़ती। यहाँ तक कि नाखूनों का सार भी वह चूस लेती है, चमड़े तक का सत्व निकाल लेती

है और तब हड्डियों पर जा पहुँचती है। वह हड्डियों की नलियों तक का रस चूस लेती है, शिराओं के जाल तक साफ कर डालती है और इन सब बातों का परिणाम यह होता है कि बाहर की ओर के रोम-कूप तक बन्द हो जाते हैं। कुण्डलिनी को बहुत प्यास लगी रहती है, इसलिये रुधिर आदि सातों धातुओं को वह एक ही घूँट में पी जाती है और इस कारण शरीर बिलकुल नीरस हो जाता है, जिससे शरीर में पूर्ण रूप से ग्रीष्म ऋतु ही व्याप्त हो जाती है। फिर नाक के छेदों में से बारह अंगुल तक जो हवा निकलती है, उसे भी यह कुण्डलिनी पकड़कर अन्दर की ओर खींचने लगती है और ऊपर की वायु नीचे की ओर दबने लगती है और इन दोनों के बीच में केवल मध्य वाले चक्र के परदे की ही आड़ रह जाती है। यदि बीच में यह आड़ न हो तो ये दोनों वायु उसी समय एक दूसरी से मिल जायं। परन्तु कुण्डलिनी कुछ व्यग्र होकर इनसे कहती है—'क्या केवल तुम्हीं दोनों अब तक बच रही हो ?'

'हे अर्जुन ! इनका अभिप्राय यह है कि यह कुण्डलिनी शरीर में का पृथ्वी वाला अंश भी खाकर समाप्त कर डालती है और जल के अंश का तो वह कहीं नाम भी नहीं रहने देती। जब यह शरीर में के पृथ्वी और जल दोनों ही भूतों को खा डालती है, तब यह पूर्ण रूप से तृप्त हो जाती है और तब कुछ शान्त होकर सुषुम्ना नामक नाड़ी के पास रहती है। वहाँ तृप्त और संतुष्ट होकर वह जो गरल या विष उगलती है, वही प्राण वायु के लिए अमृत के समान हो जाता है और उस अमृत से प्राण वायु जीवन धारण करती है। यद्यपि वह प्राण वायु उस गरल की अग्नि में से निकलती है, परन्तु फिर

भी वह शरीर के भीतरी और बाहरी दोनों पार्श्व शीतल कर देती है और तब वह प्रत्येक अंग में फिर से वह सामर्थ्य भरने लगती है जो वह पहले उनमें से खींच चुकी होती है। परन्तु नाड़ियों के मार्ग भर चुके होते हैं और उनका प्रवाह बन्द हो चुका रहता है और शरीर में अपान, व्यान, उदान, समान, नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त और धनञ्जय नामक नौ प्रकार की वायु नष्ट हो चुकी होती हैं और केवल प्राण वायु ही बची रहती है, इसलिए शरीर के सब धर्म नष्ट हो जाते हैं। फिर नाक के दाहिने और बायें रन्ध्रों की इड़ा और पिङ्गला नाम की नाड़ियाँ मिलकर एक हो जाती हैं, उनकी तीनों गांठें खुल जाती हैं और शरीर के अन्दर के छःओं चक्रों के ऊपर के आवरण फट जाते हैं।

'फिर नासिका-रन्ध्रों में से बहने वाली जिन वायुओं की उपमा सूर्य और चन्द्रमा से दी जाती है, उनका ऐसा लोप हो जाता है कि दीपक की ज्योति को भी वे नहीं हिला सकतीं। बुद्धि की चंचलता नष्ट हो जाती है और घ्राणेन्द्रिय में जो गन्ध बची रहती है, वह भी कुण्डलिनी शक्ति के साथ-साथ मध्यम नाड़ी अर्थात् सुषुम्ना में घुस जाती है। इसी बीच में चन्द्रमा की सत्रहवीं कला के अमृत का वह सरोवर जो ऊपर की ओर रहता है, धीरे-धीरे टेढ़ा होने लगता है और आकर कुण्डलिनी के मुँह के साथ लग जाता है। फिर इस कुण्डलिनी की नली में जो अमृत रस भरता है, वह समस्त अंगों में व्याप्त हो जाता है और प्राण वायु के साथ प्रत्येक अङ्ग में पहुँच कर जहाँ-तहाँ सूख जाता है। जिस प्रकार सांचे को तपाने से उस में का सारा मोम उड़ जाता है और फिर वह सांचा केवल धातु-रस से भरा रहता है, उसी प्रकार मानों चन्द्रमा की

सत्रहवीं कला इस शरीर के रूप में अवतरित होती हुई जान पड़ती है और उसके चारों ओर चमड़े का अवगुण्ठन मात्र रह जाता है। बादलों के आगे आ जाने से सूर्य छिप जाता है, परन्तु उन बादलों के हट जाने पर जिस प्रकार वह फिर अपनी प्रकाशमान् प्रभा से प्रकट होता है, उसी प्रकार इसी सत्रहवीं कला के तेजस्वी रूप पर चमड़े की खोली ही ऊपर रह जाती है। परन्तु फिर वह भी भूसी की तरह झड़ जाती है। फिर अङ्गों की कान्ति या प्रभा ऐसी जान पड़ती है मानों शुद्ध स्फटिक का निर्दोष स्वरूप हो अथवा रत्न का वीज प्रस्फुटित हुआ हो और उसमें कोमल कल्ले निकले हों। अथवा ऐसा जान पड़ने लगता है कि सन्ध्या-काल का रंग लेकर यह शरीर बनाया गया है अथवा अन्तस्थ चैतन्य के तेज की निर्मल प्रभा है। यह शरीर ऐसा जान पड़ता है कि मानों कुंकुम से भरा हुआ अथवा चैतन्य रस से ढाला गया है। मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि वह शरीर क्या है, मूर्तिमती शांति ही है। यह शरीर मानों आनन्द चित्र मे के रंगों का काम अथवा आत्म-सुख का स्वरूप दिखाई पड़ता है अथवा सन्तोष का वृक्ष दृढ़ता-पूर्वक रोपा हुआ जान पड़ता है। अथवा स्वर्ण चम्पक की कली है अथवा अमृत का पुतला है अथवा कोमलता का ऐसा उपवन है जिसमें पूर्ण रूप से वसन्त ऋतु व्याप्त है। अथवा शरद् ऋतु की आर्द्रता से चन्द्र-विम्व पल्लवित हुआ है अथवा यह कल्पना होती है कि स्वयं तेज ही रूप धारण करके आसन पर बैठा है।

'जिस समय कुण्डलिनी सत्रहवीं कला के अमृत का पान करती है, उस समय शरीर की इसी प्रकार की अवस्था हो जाती है। उस समय स्वयं काल भी इस शरीर से डरने

लगता है। उस समय वृद्धावस्था की कला का लोप हो जाता है, यौवनावस्था भी दब जाती है और फिर से बाल्यावस्था प्राप्त होती है। यदि केवल वयस् का विचार किया जाये तब तो वह बालकों के समान दिखाई पड़ता है, परन्तु उसकी सामर्थ्य का महत्व इतना अधिक होता है कि 'बाल' शब्द का अर्थ 'बल' ही करना पड़ता है। उस समय उसके जो नये तेजस्वी नख निकलते हैं, उन्हें देखकर ऐसा जान पड़ता है कि मानों स्वर्ण के वृक्ष में रत्न की ऐसी कली निकली है जो कभी कुम्हलाने वाली न हो। जो नये दांत निकलते हैं, वे भी बहुत ही छोटे-छोटे होते हैं और ऐसा जान पड़ता है कि मानों जबड़े में दोनों तरफ हीरे की कनी की पंक्तियां बैठाई हुई हों। समस्त शरीर पर केशों के ऐसे नये अग्रभाग दिखाई पड़ते हैं कि मानों बहुत ही बारीक माणिक की कनियों के समान हों। हाथों की हथेलियाँ और पैरों के तलुए लाल कमल के समान सुन्दर जान पड़ते हैं और उसकी जो आंखें धुलकर निर्मल हो जाती हैं, भला उनका वर्णन कौन कर सकता है? जिस समय मोती अपनी पक्व दशा को प्राप्त होता है, उस समय वह सोपी में नहीं समाता। उस समय सीपी की सींवन जिस प्रकार खुल जाती है, उसी प्रकार उसकी दृष्टि भी आंखों के पलकों में नहीं समाती और आवेश से बाहर निकलना चाहती है। जिस समय उसकी आंखें अधखुली रहती हैं, उस स्थिति में वह समस्त आकाश को आच्छादित कर सकती हैं।

'हे अर्जुन ! तुम यह बात ध्यान में रखो कि योगी का शरीर यद्यपि कान्ति के विचार से सोने का होता है, तो भी भार के विचार से वह वायु का ही होता है और इसका कारण यह है कि उसमें पृथ्वी का जड़ अंश और जल का द्रव अंश नाम को

भी नहीं होता। फिर उस योगी को समुद्र के उस पार की चीजें भी दिखाई पड़ने लगती हैं; स्वर्ग का नाद भी सुनाई पड़ने लगता है और वह च्यूंटी के मन का भाव भी जान सकता है। वह हवा के घोड़े पर सवार होता है और यदि वह पानी के ऊपर चले तो उसके पैर का पानी से स्पर्श भी नहीं होता। बस, इसी प्रकार की अनेक सिद्धियां उसे प्राप्त हो जाती हैं।

'हे पार्थ ! अब तुम इधर ध्यान दो। प्राण वायु का आधार लेकर, हृदय-कोश के तलों को सीढ़ियों के डण्डे बनाकर और सुषुम्ना नामक मध्यम नाड़ी की सीढ़ी बनाकर जो कुण्डलिनी हृदय तक पहुँच जाती है, उसे जगत् की जननी ही समझना चाहिये। वही जीवात्मा की शोभा है और वही ओंकार के अंकुर के ऊपर की छाया है। वही शून्य की बैठक और परमात्मा रूपी शिव-प्रतिमा का सम्पुट है अथवा ओंकार की स्पष्ट जन्म-भूमि ही है। अस्तु ! जब इस प्रकार की यह सुकुमार कुण्डलिनी हृदय-कोश में प्रवेश करती है, तब आप से आप होने वाला दिव्य अनाहत ध्वनि का नाद उठने लगता है। कुण्डलिनी शक्ति के अंग से लगे रहने के कारण ही बुद्धि को चैतन्य प्राप्त होता है, इसलिये यह अनाहत नाद उसे थोड़ा सुनाई पड़ने लगता है।

'इस अनाहत नाद के १० प्रकार होते हैं। उनमें से नाद का पहला प्रकार घोष है जो पहले सुनाई पड़ता है। फिर उसी घोष के कुण्ड में ओंकार के रूप के समान अंकित नाद-चित्र की आकृति बनने लगती है। ये सब बातें कल्पना से ही जाननी चाहियें। लेकिन कल्पना करने वाले को भी भला यह बात कैसे मालूम हो सकती है ? सच तो यह है कि यही समझ में नहीं आता कि उस स्थान पर किस का नाद हो रहा है ? परन्तु, हे अर्जुन ! इस वर्णन के फेर में तो मैं बिलकुल भूल ही गया।

जब तक प्राणवायु का नाश नहीं होता, तब तक हृदय रूपी आकाश में आवाज होती ही रहती है और वही आवाज इस तरह गूँजती रहती है। जब उस अनाहत के मेघ नाद से समस्त हृदयाकाश गूंज उठता है, तब ब्रह्मरन्ध्र की खिड़की आप से आप खुल जाती है। हे अर्जुन! हृदयाकाश के ऊपर जो महदाकाश अथवा ब्रह्मरन्ध्र होता है, उसी में चैतन्य निराधार स्थिति में रहता है। ज्यों ही उस महदाकाश के घर में कुण्डलिनी देवी का प्रवेश होता है, त्यों ही वह अपना तेज उस चैतन्य के आगे भोज रूप में अर्पित करती है। ज्यों ही बुद्धि के शाक के साथ इस शुद्ध भोजन का नैवेद्य लगता है, त्यों ही फिर द्वैत का कहीं नाम भी बाकी नहीं रह जाता। फिर कुण्डलिनी की निजी कान्ति नष्ट हो जाती है और तब वह केवल प्राण वायु का स्वरूप प्राप्त कर लेती है।

'यदि तुम यह पूछो कि उस समय उसका स्वरूप कैसा हो जाता है, तो बतलाता हूँ, सुनो! ऐसा जान पड़ता है कि अब तक वायु की यह पुतली सुनहरा पीताम्बर पहने हुए थी, पर अब वह अपना वह पीताम्बर दूर करके नग्न हो गई है। अथवा ऐसा जान पड़ता है कि हवा का झोंका लगने के कारण दीपक की ज्योति बुझ गई है। अथवा जिस प्रकार बिजली एक वार आकाश में चमक कर अदृश्य हो जाती है, उसी प्रकार जान पड़ता है कि हृदय-कमल तक सोने की सलाई के समान दिखाई पड़ने वाली अथवा प्रकाश के स्रोत की तरह बहती हुई वह कुण्डलिनी हृदय प्रान्त की दरी में अचानक समा जाती है और तुरन्त ही शक्ति का शक्ति में लय हो जाता है। ऐसी अवस्था में हम उसे भले ही शक्ति कह लें, परन्तु यदि वास्तविक दृष्टि से देखा जाय तो वह प्राणवायु ही होती है। भेद केवल यही है

कि उसका नाद, कान्ति और तेज दिखाई नहीं पड़ता। फिर उस अवस्था में मन को जीतने, वायु को वन्द करने या रोकने अथवा ध्यान लगाने की भी कोई आवश्यकता नहीं रह जाती। उस समय मन में संकल्प-विकल्प भी नहीं उठते। वास्तव में इस स्थिति को पञ्च महाभूतों को पूर्ण रूप से नष्ट करने वाली ही समझना चाहिये। इस प्रकार योग-साधन के द्वारा पिण्ड से पिण्ड को ग्रसना नाथ सम्प्रदाय का रहस्य या मूल उपाय है।'

यह हिन्दी साहित्य कुटीर, बनारस द्वारा प्रकाशित एवं बाबू रामचन्द्र वर्मा द्वारा अनूदित ज्ञानेश्वरी गीता हिन्दी टीका श्लोक ११ से १४ तक का भाष्य है। श्लोक १५ का भाष्य भी पढ़ना चाहिये। वैसे तो पूरा अध्याय ही पढ़ना आवश्यक-सा है।

इस प्रकार कुण्डलिनी-जागरण की विधि तथा उसके स्फुरण के प्रकार बताने के बाद अन्तिम पंक्ति में आचार्यश्री अब भगवती के स्वरूप का वर्णन करते हैं जो कि परानन्द-कारा, परशिवपरा एवं कदाचिदपरा शब्दों द्वारा बताया गया है।

**परानन्द कारा** - भगवती का स्वरूप परानन्दमय या परानन्द स्वरूप अथवा आकार वाला है। आनन्द दो प्रकार का है-पर एवं अपर। सांसारिक आनन्द ही अपर आनन्द है, क्योंकि संसार के सब सुख क्षणिक एवं नश्वर हैं और उनमें कोई वास्तविकता नहीं होती। सांसारिक आनन्द विषयानन्द है। विषयों में आनन्द का केवल भ्रम होता है। यह केवल मनुष्य के मन का भ्रम होता है। दैनिक जीवन में हम देखते हैं कि मनुष्य सोचता है कि अमुक विषय में आनन्द प्राप्त होगा, किन्तु कुछ समय पश्चात् उस विषय में उसे आनन्द के अनुभव

की कमी होने लगती है और उसे छोड़कर वह दूसरे विषय में आनन्द लेने लगता है। जिस प्रकार मरुस्थल में मृग मृग-मरीचिका को वास्तविक जल समझ कर इधर-उधर दौड़ता है, लेकिन वहाँ जाने पर उसे कुछ नहीं मिलता, इसी प्रकार मनुष्य का मन सांसारिक सुखों को वास्तविक समझ कर उनके पीछे भागता है। सांसारिक सुख तो सब सापेक्षिक हैं, वास्तविक आनन्द तो वह ब्रह्मानन्द ही है जो कि परानन्द है और जिसे समाधि की अवस्था में साधक का मन अनुभव करता है। यही भगवती का स्वरूप है जैसा कि प्रथम श्लोक में कहा गया है। स्वरूप से व्यक्ति का बोध होता है और आनन्द से ब्रह्म की अनुभूति होने से उसे ब्रह्म का स्वरूप या आकार कहा गया है। भगवती के इस रूप को जान लेने पर साधक स्वयं आनन्दमय हो जाता है।

**परशिव परा**—इस शब्द के यहाँ दो अर्थ लिये जा सकते हैं—

(१) परशिव से परे—वह भगवती परम शिव से भी परे है, जैसा कि पहले श्लोक में कहा जा चुका है।

(२) परशिव-परायण—अर्थात् वह परम सती है अथवा कुण्डलिनी शक्ति जागकर परम शिव में लीन हो जाती है, इसलिये वह पर-शिव-परायण है।

**काचिदपरा**—'काचिद्', 'अपरा'—भगवती के दो स्वरूप यहाँ बताये गये हैं,—परा तथा अपरा। परा स्वरूप में वह परम ब्रह्म है एवं अपरा स्वरूप में वह कोटि-कोटि ब्रह्माण्डों के रूप में दृष्टिगोचर होती है। समस्त जगत् भगवती का ही तो रूप है और यही उसका अपरा अथवा ऐहिक स्वरूप है। सब ब्रह्माण्डों का सृजन उसी के अंश से होता है और वह अनन्त-

शक्ति सम्पूर्ण ब्रह्माण्डों का सृजन करके भी तो अनन्त है, यथा—

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्ण मुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्ण मेवावशिष्यते॥

यह सब तो उसका जरा-सा भाग है—

पुरुष एवेद ँ सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्ने नातिरोहति॥२
एतावानस्य महिमा तो ज्याया ँश्च पुरुषः।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवी॥३
त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः पादोऽस्ये हा भवत्पुनः।
ततो विष्वङ व्यक्रा मत्साशनानशने अभि॥४

—पुरुष सूक्त

इसलिये यह जगत् रूप में दृष्टव्य समस्त ब्रह्माण्ड ही भगवती का अपरा स्वरूप है। यथा—

ईशावास्यमिद ँ सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।

—ईशावास्य उपनिषद्

भगवती का परा स्वरूप तो वह परम पद है जो कि परम ब्रह्म है।

हम यहाँ यह भी कह सकते हैं कि भगवती अपने उपासक को भोग और मोक्ष दोनों प्रदान करने के कारण अपरा एवं परा उभय रूपी है।

[ ३ ]

मनो मार्गं जित्वा मरुत इह नाड़ो गण जुषो,
निरुध्यार्कं सेन्दुं दहनमपि संज्वाल्य शिखया।

**सुषुम्णां संयोज्य श्लथयति च षडग्रन्थि शशिनं,**
**तवाज्ञा चक्रस्थं विलयति❀ महायोगि समयी ॥**

**सरल अर्थ**—मनोमार्ग को जीतकर अर्थात् मन का निरोध करके, नाड़ी समूहों में वायु का निरोध करके अथवा नाड़ी-समूह को वायु से युक्त अर्थात् परिपूरित करके तथा साथ ही सूर्य और चन्द्रमा का निरोध कर अग्नि को प्रज्ज्वलित करके, उसकी शिखा द्वारा सुषुम्ना को युक्त करके (जो) छः ग्रन्थि वाले चन्द्रमा को अर्थात् उसकी छः ग्रन्थियों को शिथिल करता है अथवा खोलता है, वह समयाचार वाला योगी तेरे आज्ञा चक्र में लय हो जाता है (अथवा विलास करता है) या तेरे आज्ञा चक्र में स्थित चन्द्रमा में योगी का मन लय हो जाता है। वही महा योगी है।

**व्याख्या**—पहले यह बताकर कि उस महा शक्ति कुण्डलिनी का स्फुरण किस प्रकार होता है तथा उसका क्या आकार है, अब आगे आचार्यश्री कुण्डलिनी के आरोहण का वर्णन करते हैं। कुण्डलिनी शक्ति को मूलाधार से उठाकर ऊपर ले जाने की क्रिया को योग-शास्त्र में शक्ति-चालन कहा है। इसके लिये आचार्यश्री नीचे लिखे उपायों का प्रयोग बता रहे हैं –

१. **मनोमार्ग जित्वा**—योग के द्वारा, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है।

२. **मरुत इह नाड़ीगण जुषो**—कुम्भक के द्वारा वायु से नाड़ियों को युक्त करके।

३. **निरुध्यर्कं सेन्दुं**—इड़ा तथा पिङ्गला नाड़ियों में वायु के प्रवाह को रोक कर अथवा चन्द्र एवं सूर्य स्वरों को रोककर अर्थात् कुम्भक करके।

---

❀पाठान्तर=विलसति

४. **दहनमपि संज्वाल्य**—योगाग्नि को प्रकट कर।

५. **शिखया सुषुम्णां संयोज्य** - उस अग्नि की शिखा को सुषुम्ना में मिलाये अर्थात् सुषुम्ना को उससे युक्त करे।

६. **श्लथयति षडग्रन्थि**—षट् चक्रों का भेदन कर।

७. **शशिनं तव आज्ञा चक्रस्थं विलयति**—आज्ञा चक्र स्थित चन्द्रमा में विलीन कर दे।

इस विषय में वामकेश्वर तन्त्र कहता है—

भुजङ्गाकारेण मूलाधारे समाश्रिता।
शक्तिः कुण्डलिनी नाम बिसतन्तुनिभा शुभा॥
मूल कन्दं फणाग्रेण दृष्ट्वा कमल कन्दवत्।
मुखेन पुच्छं संग्रह्य ब्रह्मरन्ध्र समन्विता॥
पद्मासन गतः स्वस्थो गुदमाकुञ्चय साधकः।
वायुमूर्ध्वगतिं कुर्वन् कुम्भकाविष्ट मानसः॥
वायव्याघात वशादग्निः स्वाधिष्ठानगतो ज्वलन्।
ज्वलनाघात पवना घातैरुन्निद्रितोऽहिराट्॥
रुद्र ग्रन्थि ततो भित्वा विष्णु ग्रन्थि भिनत्यथ।
ब्रह्मग्रन्थि च भित्वैव कमलानि भिनत्ति षट्॥
सहस्र कमले शक्तिः शिवेन सह मोदते।
साचवस्था परा ज्ञेया सैव निवृत्ति कारणम्॥

ध्यान विन्दु उपनिषत् तथा योग चूड़ामणी उपनिषत् भी यही कहते हैं -

मुखेनाच्छाद्य तद्वारं प्रसुप्ता परमेश्वरी।
प्रबुद्धा वह्नियोगेन मनसा मरुता सह॥
सूचिवद्गुणमादाय व्रजत्यूर्ध्वं सुषुम्नया।
उद्घाटयेत्कपाटं तु यथा कुञ्चिकया हठात्॥
कुण्डलिन्या तया योगी मोक्ष द्वारं विभेदयेत्।

**कृत्वा संपुटितौ करौ दृढतरं बध्वाथ पद्मासनं गाढं**
**वक्षसि सन्निधाय चिबुकं ध्यानं च तच्चेतसि (तच्चेष्टितम्) ॥**
**वारं वारमपातमूर्ध्वमनिलं प्रोच्चारयन्पूरितं ।**
**मुञ्चन्प्राणमुपैति बोधमतुलं शक्तिप्रभावान्नरः ॥**
—ध्यानबिन्दु ६६ से ६९ एवं योगचूड़ामणी ३८ से ४०

**मनोमार्गं जित्वा**—दूसरे श्लोक में भी आचार्यश्री ने 'मनस्तत्वं जित्वा' कहा है। इसका अर्थ यह है कि मन का निरोध अत्यन्त आवश्यक है। मन का निरोध होने पर या मन के वशीभूत हो जाने पर ही धारणा की जा सकती है। धारणा से ही प्राणवायु का सुषुम्ना में प्रवेश होगा। इसलिये आचार्य श्री कहते हैं कि पहले उपरोक्त प्रकार से मन को जीतकर फिर नाड़ियों को वायु से परिपूरित करे। क्षुरिकोपनिषत् कहता है कि योगी ध्यान तथा धारणा से सब नाड़ियों में से प्राणों का संचार रोककर सुषुम्ना में ले जावे, तब वह उस परब्रह्म को पा सकेगा।

**मरुत इह नाड़ी गण जुषो**—अब यहाँ आचार्य नाड़ियों को वायु से परिपूरित या युक्त करने की आज्ञा देते हैं। अथवा नाड़ियों में वायु का निरोध करने को कहते हैं। यह प्राणायाम के द्वारा संभव होगा। इसके लिये योगशास्त्र विशेषतः भस्त्रिका तथा कुम्भक का उपदेश करते हैं। प्राणायाम से ही वायु का निरोध हो सकेगा। भगवान् गीता में कहते हैं—

**स्पर्शान्कृत्वा बहिर्बाह्यांश्चक्षुश्चैवान्तरे भ्रुवोः ।**
**प्राणापानौ समौ कृत्वा नासाभ्यन्तर चारिणौ ॥२७**
**यतेन्द्रियमनोबुद्धिर्मुनिर्मोक्षपरायणः**
**विगतेच्छाभयक्रोधो यः सदा मुक्त एव सः ॥२८**
—गीता, अध्याय ५

प्राणायाम का महत्व उपनिषदों में बहुत बताया है, यथा—

यथा पर्वत धातूनां दह्यन्ते धमनान्मलाः ।
तथेन्द्रियकृता दोषा दह्यन्ते प्राण धारणात् ॥७
प्राणायामैर्दहेद्दोषान्धारणाभिश्च किल्बिषम् ।
प्रत्याहारेण संसर्गान्ध्यानेनानीश्वरान्गुणान् ॥८
किल्बिषं हि क्षयं नीत्वा रुचिरं चैव चिन्तयेत् ॥६

—अमृतनादोपनिषत्

पद्मासन स्थितो योगी नाड़ीद्वारेषु पूरयन् ।
मारुतं कुम्भयन्यस्तु स मुक्तो नात्र संशयः ॥७०
प्राणायामो भवेदेवं पातकेन्धन पावकः ।
भवोदधि महासेतुः प्रोच्यते योगिभीः सदा ॥१०८

नाड़ियों को वायु से युक्त करने से नाड़ी-शुद्धि होगी और नाड़ी-शुद्धि होने पर ही शक्ति-चालन संभव हो सकेगा। नाड़ी-शुद्धि का प्रकरण घेरण्ड संहिता के पंचम अध्याय में दिया है। वहां इस विषय पर अच्छा प्रकाश डाला है। वहाँ नाड़ी-शुद्धि के दो प्रकार कहे गये हैं—(१) समनु और (२) निर्मनु। समनु प्रकार प्राणायाम के साथ धारणा के सहित है। यहां पर आचार्यश्री भी इसी ओर संकेत करते हैं। इस प्रकार प्राणायाम के द्वारा जब नाड़ियों की शुद्धि हो जाय तब योगी इड़ा और पिंगला में वायु के प्रवाह को रोके (निरुध्यर्क सेन्दु) अर्थात् कुम्भक करे जिससे योगाग्नि प्रज्वलित होगी (दहनमपि संज्वाल्य)। इस विषय में योगचूड़ामणी उपनिषद् का कथन है—

एवं द्वारं समाश्रित्य तिष्ठन्ते नाडयः क्रमात् । इडा पिङ्गला सौषुम्नाः प्राण मार्गे च संस्थिताः ॥२१॥ सततं प्राणवाहिन्यः

**सोम सूर्याग्नि देवताः ॥२२॥ यथेष्ट धारणं वायोरनलस्य प्रदीपनम् । नादाभिव्यक्तिरारोग्यं जायते नाडि शोधनात् ॥९९॥ बद्ध पद्मासनो योगो नमस्कृत्य गुरुं शिवम् । नासाग्रदृष्टिरेकाकी प्राणायामं समभ्यसेत् ॥१०६॥ द्वाराणां नव संनिरुध्य मरुतं बध्वा दृढां धारणां नीत्वा कालमपान वह्नि सहितं शक्त्या समं चालितम् । आत्म ध्यानयुतस्त्वनेन विधिना विन्यस्य मूर्ध्नि स्थिरं यावत्तिष्ठति तावदेव महतां सङ्गो न संस्तूयते ॥१०७**

योगशिखोपनिषत् भी प्रथम अध्याय में कहता है

**वायुना ज्वलितो वह्निः कुण्डलीमनिशं दहेत् ।**
**संतप्ता साग्निना जीव शक्तिस्त्रैलोक्य मोहिनी ॥८५॥**
**प्रविशेच्चन्द्र खण्डे (चन्द्र तुण्डे) तु सुषुम्ना वदनान्तरे ।**
**वायुना वह्निना सार्धं ब्रह्म ग्रन्थि भिनत्ति सा ॥८६॥**
**विष्णु ग्रन्थि ततो भित्वा रुद्र ग्रन्थौ च तिष्ठति ।**
**ततस्तु कुम्भकैर्गाढं पूरयित्वा पुनः पुनः ॥८७॥**
**यथैव निश्चितः कालश्चन्द्र सूर्य निबन्धनात् ।**
**आपूर्य कुम्भितो वायुर्बहिर्नो याति साधके ॥१२०॥**

आगे छठे अध्याय में कहता है—

**वाम दक्षे निरुन्धन्ति प्रविशन्ति सुषुम्नया ।**
**ब्रह्मरन्ध्रं प्रविश्यन्तितेः यान्ति परमां गतिम् ॥३४**

शाण्डिल्योपनिषत् इड़ा, पिङ्गला के विषय में कहता है—

**इडायां चन्द्रश्चरति । पिंगलायां रविः । तमोरूपश्चन्द्रः । रजोरूपो रविः । विषभागो रविः । अमृत भागश्चन्द्रमा ।**

इसके अनुसार सूर्य और चन्द्रमा के निरोध का अर्थ तमो-

---

*पाठान्तर=प्रविश्यान्तस्ते

गुण तथा रजोगुण को जीतकर भी किया जा सकता है। रामायण के उत्तराकाण्ड में गोस्वामी जी कहते हैं—

**जोग अगिनि प्रकट करि तब कर्म सुभासुभ लाइ।**
**बुद्धि सिरावे ग्यान घृत ममता मल जरि जाइ ॥११७॥**

उपरोक्त प्रकार से जब योगी इड़ा और पिङ्गला का निरोध कर लेगा (यहां अर्क एवं इन्दु से इड़ा और पिङ्गला के निरोध कुम्भक का अर्थ लिया जा सकता है अथवा इड़ा एवं पिङ्गला में प्राण वायु का प्रवाह रोकना और उसको सुषुम्ना में ले जाना हो सकता है) तब उसमें योगाग्नि प्रकट होगी और फिर तव वह योगी अपनी उस योगाग्नि की शिखा से सुषुम्ना को संयुक्त करे (**शिखया सुष्मणां संजोज्य**) अर्थात् प्राणायाम के द्वारा जिस योगाग्नि का उदय होगा उसके द्वारा सुषुम्ना में जमा हुआ मैल जल जायेगा और तब सुषुम्ना-द्वार खुल जायेगा और उसमें प्राणों का संचार हो सकेगा। अथवा जब सूर्य एवं चन्द्र नाड़ियों में प्राणों का संचार बन्द होगा तब वह कुण्डलिनी शक्ति अग्नि के ताप से सन्तप्त होकर अपने कुण्डलों को छोड़कर सीधी हो जायेगी और सुषुम्ना-पथ में प्रवेश करके अग्रसर होगी। तब वह आगे बढ़ती हुई सब (छः) चक्रों (**श्लथयति च षडग्रन्थि**) को खोल देगी अथवा उनका वेध हागा। यहाँ आचार्य षडग्रन्थि से सुषुम्नान्र्तगत छः चक्रों की ओर संकेत कर रहे हैं।

कुण्डलिनी का स्वरूप भी दीपशिखावत् है और वह अग्नि सदृश्य है। वैदिक वाङ्मय में कुण्डलिनी शक्ति को अग्नि ही कहा गया है। इसलिये **दहनमपि संज्वाल्य** का अर्थ कुण्डलिनी शक्ति को जगाकर भी लिया जा सकता है अर्थात् प्राणायाम द्वारा कुण्डलिनो शक्ति को जगावे और फिर उसकी

शिखा से सुषुम्ना को युक्त करे अर्थात् कुण्डलिनी शक्ति का सुषुम्ना में प्रवेश कराये।

**शशिनं तव आज्ञाचक्रस्थं विलयति**—इस प्रकार जब वह माँ महामाया पारमी शक्ति कुण्डलिनी सुषुम्ना पथ पर अग्रसर होगी, तब वह सब चक्रों का वेध करती हुई आज्ञा चक्र में पहुँच जायेगी। आज्ञा चक्र चन्द्रमा का स्थान है। चन्द्रमा से यहाँ मन भी लिया जा सकता है क्योंकि चन्द्रमा मन का द्योतक है। इसलिये यह कहा जा सकता है कि आज्ञा चक्र में वह पारमी शक्ति कुण्डलिनी शक्ति के रूप में अभिव्यक्त होगी। 'शशिनं तव आज्ञा चक्रस्थं विलयति' का अर्थ यहाँ सोम कुण्डलिनी से भी लिया जा सकता है अर्थात् वह अपने अग्नि और सूर्य खण्डों का वेध करके चन्द्र खण्ड में विलीन हो जाती है।

अथवा आज्ञा चक्र चन्द्र की पीठ होने से भी यहाँ 'तव आज्ञा चक्रस्थ शशिनं' लिया जा सकता है। आज्ञा चक्र चन्द्र का स्थान माना है, इसलिये यहाँ आज्ञा चक्र में कुण्डलिनी शक्ति को ले जाने का आदेश है।

आचार्य ने यहाँ 'तव' शब्द का उपयोग किया है। 'तव' प्रयोग करके यहाँ यह बताया गया है कि सब चक्र सुषुम्नागत होने से भगवती के ही हैं क्योंकि सुषुम्ना भगवती का शरीर है। अथवा वह पारमी शक्ति स्वयं ही सब जगह अपना रूप बदल-बदल कर स्थित है या समस्त ब्रह्माण्ड ही उस भगवती का शरीर है, तब भला उससे कुछ अलग हो ही कैसे सकता है? किंवा साधक के अहं का नाश हो जाने पर सब कुछ शक्ति रूप में ही दीखता है ( मेरे परम पूज्य गुरुदेव श्री स्वामी विष्णुतीर्थ जी महाराज ने अपनी सौन्दर्य लहरी की टीका में

श्लोक ३६ की व्याख्या में पृष्ठ २०४ पर 'तव' शब्द के प्रयोग पर बड़ा ही सुन्दर प्रकाश डाला है)।

**महायोगि समयी**—इस प्रकार जिसने चक्रों का भेदन करके कुण्डलिनी शक्ति का आज्ञा चक्र में लय कर लिया है, वह समयाचार का जानने वाला महा योगी है। महा शब्द के प्रयोग द्वारा आचार्य यहाँ समयाचार वाले योगी की श्रेष्ठता प्रतिपादित करते हैं। अथवा योगी तो वह हर व्यक्ति है जो योग का साधन करता है, किन्तु जिस साधक में कुण्डलिनी शक्ति का जागरण और चक्रों का वेध हो चुका है, वही महायोगारूढ़ होने से महा योगी है। कुण्डलिनी के जागरण पर ही महायोग का प्रारम्भ होता है ( देखिये मेरे परम गुरुदेव विरचित 'महायोग-विज्ञान' )।

[ ४ ]

**यदा तौ चन्द्रार्कौ निज सदन संरोधन वशा-**
**दशक्तौ (दशक्ता) पीयूषस्रवण हरणे सा च भुजगी।**
**प्रबुद्धा क्षुत्क्रुद्धा दशति शशिनं बैन्दवगतं,**
**सुधाधारा सारैः स्नापयसि तनुं बैन्दवकले॥**

**सरल अर्थ**—जब चन्द्र और सूर्य अपने सदन में अच्छी तरह से निरुद्ध होने के वशीभूत अमृत के स्रवण का अपहरण करने में अशक्त हो जाते हैं, तब वह भुजगी जागकर और भूख से क्रुद्ध होकर बैन्दव स्थान में पहुँच कर चन्द्रमा को डसती है और, हे बैन्दव कले ! तू अमृत की धाराओं से शरीर को स्नान करा देती है।

**व्याख्या**—आचार्यश्री ज्ञानेश्वर जी ने अपनी ज्ञानेश्वरी गीता के छठे अध्याय में इस विषय का वड़ा ही सरस वर्णन

किया है जो कि पहले लिखा जा चुका है। वराह उपनिषत् के ५वें अध्याय में भी इस विषय का वर्णन है। मेरे परम पूज्य गुरुदेव ने अपनी अंग्रेजी की पुस्तक 'डिवाइन पावर ( देवात्म शक्ति )' में भी इस विषय पर विषद व्याख्या की है।

शरीर में सुषुम्ना के दोनों ओर अर्थात् बाँयें तथा दांयें इड़ा तथा पिङ्गला नाड़ियाँ हैं। बाँईं नाड़ी चन्द्रमा का तथा दाहिनी सूर्य का स्थान है। चन्द्रमा बाँईं नाड़ी के द्वारा संचार करता हुआ शरीर की सब नाड़ियों में अमृत का संचार करता है तथा सूर्य दक्षिण नाड़ी के द्वारा इस अमृत का हरण कर लेता है। सूर्य विष और चन्द्रमा अमृत रूप है। जब चन्द्रमा और सूर्य दोनों घूमते हुए मूलाधार चक्र में आ जाते हैं तो वह अमावस्या कहलाती है। ज्योतिष शास्त्र के अनुसार जब चन्द्रमा और सूर्य एक राशी में आ जाते हैं तब अमावस्या होती है। मूलाधार में सूर्य और चन्द्रमा दोनों एक राशी में आ जाते हैं। इस विषय में दर्शनोपनिषत् ऋचा ४० से ४७ तक देखिये।

अमावस्या से ही सब तिथियाँ उत्पन्न होती हैं। इस प्रकार जब मूलाधार में सूर्य और चन्द्रमा का सम्मिलन होता है तो सूर्य की किरणों के सम्पर्क के कारण चन्द्रमण्डल द्रवित होकर अमृत का स्रवण करता है जो कि मूलाधार कुण्ड में इकट्ठा होता है और कुण्डलिनी शक्ति उसका पान करती रहती है। जब सूर्य और चन्द्रमा की गति स्तम्भित हो जाती है अर्थात् जब योगी प्राणायाम के द्वारा सूर्य और चन्द्रमा को अपने-अपने स्थान में रोक देता है तो मूलाधार में अमृत का स्रवण नहीं हो पाता और इस प्रकार अमृत का हरण हो जाता है। तब कुण्डलिनी शक्ति को अमृत न मिलने से वह अशक्त हो जाती है। साथ ही योग द्वारा उत्पन्न अग्नि ( वायु के द्वारा प्रेरित स्वाधिष्ठान की

अग्नि) मूलाधार स्थित अमृत-कुण्ड को सुखा देती है। इस प्रकार कुण्डलिनी शक्ति को अमृत न मिलने के कारण वह भूख से पीड़ित होकर सर्प के समान फुँकार करती हुई जाग उठती है और अपने कुण्डलाकार स्वरूप को छोड़कर सीधी होकर सुषुम्नागत षट् चक्र और तीन ग्रन्थियों को भेद कर सहस्र दल कमल स्थित चन्द्र मण्डल को डस लेती है अर्थात् वेध करतो है जिसके कारण उसमें छिद्र हो जाता है और उससे अमृत की धारा बहने लगती है। यह अमृत की धारा आज्ञा चक्र में स्थित चन्द्र-मण्डल को अमृत से भर देती है या परिपूर्ण कर देती है या आप्लावित कर देती है और फिर यहाँ से यह अमृत नाड़ियों के द्वारा सारे शरीर में संचार करता है।

ऊपर कहे अनुसार कुन्डलिनी अपने मुख से सुषुम्ना को आच्छादित करके मूलाधार में सोती रहती है और सुषुम्ना-विवर में रहने वाले अमृत का पान करती रहती है, परन्तु जब सूर्य और चन्द्रमा का निरोध हो जाता है तब अमृत का स्राव बन्द होने के कारण वह भूख से पीड़ित होकर जाग उठती है। आचार्य यहाँ कुन्डलिनी शक्ति के जागरण का वर्णन कर रहे हैं।

**अथवा**—सूर्य की किरणों में प्रकाश, उष्णता तथा प्राण-शक्ति रहती है। उष्णता विष का कार्य करती है। चिकित्सा-विज्ञान का सिद्धान्त है कि अल्प मात्रा में विष भी अमृत का कार्य करता है, इसलिये सूर्य की उष्णता भी एक परिमित तापमान की अवधि तक जीवन-रक्षा के लिये आवश्यक है, क्योंकि उष्णता से ही अन्न पकता है और उसी से अन्न का पाचन होता है। किन्तु यही उष्णता अधिक मात्रा में मारक होती है। चन्द्रमा स्वयं अप्रकाशित है। वह केवल सूर्य के

प्रकाश का परावर्तन करने के कारण प्रतिविम्बित होता है। जब सूर्य की किरणें चन्द्रमा पर पड़ती हैं तो वह उनकी उष्णता का हरण कर लेता है और इस प्रकार अमृत का स्राव करता है। मणीपूरस्थ सूर्य और सहस्रार स्थित चन्द्रमा दोनों इस कार्य में लगे हुए हैं (साधारणतया सूर्य की सब किरणें ऊपर नहीं जातीं क्योंकि मणीपूरस्थ सूर्य अधोमुख है, इसीलिये अमृत की अपेक्षा विष का स्रवण अधिक होता है) और मूलाधार में सोई हुई कुण्डलिनी अमृत का पान करती रहती है। परन्तु जब सूर्य और चन्द्रमा के कार्य का निरोध हो जाता है तो कुण्डलिनी शक्ति को अमृत मिलना बन्द हो जाता है अथवा हम यह कह सकते हैं कि अमृत के स्रवण का हरण हो जाता है जिससे अशक्त होकर भूख से तिलमिलाकर वह क्रोध-पूर्वक जागती है और सीधी होकर सुषुम्ना मार्ग से जाकर सहस्रारस्थ चन्द्रमण्डल को डस लेती है अर्थात् उसका वेध करती है जिससे चन्द्र-मण्डल से अमृत टपकने लगता है और सारा शरीर उस अमृत से आप्लावित हो जाता है। (कुण्डलिनी शक्ति के जागने पर मणीपूरस्थ सूर्य ऊर्ध्वमुख होकर चन्द्र-मण्डल को प्रतिबिम्बित करता है जिससे अमृत का स्रवण होने लगता है)।

**अथवा—'पियूष स्रवण हरण'** अर्थात् **'जीवनी शक्ति का ह्रास'**— श्वास के द्वारा ही मनुष्य की जीवनी शक्ति का ह्रास होता है। जब कुम्भक के द्वारा श्वास-प्रश्वास की क्रिया को रोक दिया जाता है अर्थात् सूर्य एवं चन्द्र (इड़ा तथा पिङ्गला अथवा दाँयाँ एवं बांयां नासा छिद्र) को बन्द कर दिया जाता है तब जीवनी शक्ति का ह्रास नहीं हो पाता अर्थात् कुण्डलिनी शक्ति अमृत (जीवनी शक्ति) का हरण करने में अशक्त हो

जाती है और तब वह शक्ति प्राणों का ह्रास न होने के कारण जीवन की वृद्धि करती है अर्थात् अमृत स्वरूप हो जाती है।

अर्वाचीन शरीर-क्रिया-विज्ञान के अनुसार शरीर में शक्ति (इनर्जी) के दो प्रमुख कार्य हैं जो कि केटाबालिक तथा एनाबालिक कार्य कहलाते हैं। केटाबालिक क़ार्य विनाशकारी एवं एनाबालिक सृजनात्मक या जीवनदाता कार्य हैं। हम केटाबालिक कार्य करने वाली शक्ति को सूर्य तथा सृजनात्मक (एनाबालिक) कार्य करने वाली शक्ति को चन्द्रमा अर्थात् अमृत कह सकते हैं।

योगी प्राणायाम के द्वारा इन दोनों प्रकार के कार्यों का निरोध कर देता है। तब वह शक्ति (इनर्जी) अपना रूप परिवर्तन कर लेती है और सूक्ष्म स्तरों पर कार्य करने लगती है। केटाबालिक तथा एनाबालिक दोनों कार्यों के न होने से शारीरिक स्थूल कार्य बन्द हो जाते हैं जिससे आयु क्षीण होनी बन्द होकर योगी की आयु में वृद्धि होती है और यही अमृत का स्रवण है।

'षट-चक्र-निरूपण' तथा शिव-संहिता के पंचम पटल में इस विषय का अच्छा वर्णन है।

[ ५ ]

**पृथिव्यापस्तेजः पवनगगने तत्प्रकृतयः,**
**स्थितास्तन्मात्रास्ता विषयदशकं मानसमिति।**
**ततो (तथा) माया विद्या तदनु च महेशः शिव इतः,**
**परं तत्वातीतं मिलितवपुरिन्दोः परकला॥**

**सरल अर्थ**—पृथ्वी, जल, तेज, पवन और आकाश तथा उनकी प्रकृति रूप तन्मात्रा और दस इन्द्रियाँ, मन तथा माया,

विद्या, महेश और शिव, इन सबसे परे तत्वातीत में विलीन हो कर (तद्रूप होकर) चन्द्रमा की परकला तू रह जाती है।

**व्याख्या**—कुण्डलिनी शक्ति के द्वारा चन्द्रमण्डल का वेध बताने के पश्चात् अब आचार्यश्री कुण्डलिनी शक्ति का अपने परा स्वरूप में लय होने का वर्णन करते हैं। इस विषय में आगे बढ़ने से पूर्व तत्वों का ज्ञान आवश्यक है। शैव मत के अनुसार तत्व ३६ हैं। 'प्रत्यभिज्ञा' के अनुसार ये इस प्रकार हैं—

१. शिव, २. शक्ति, ३. सदाशिव (मन्त्र महेश्वर या सदाख्य अथवा अर्धनारीश्वर), ४. ईश्वर (महेश्वर), ५. शुद्ध विद्या (मन्त्र)।

**माया**

६. माया, ७. कला, ८. विद्या, ९. राग, १०. काल, ११. नियति, १२. पुरुष, १३. प्रकृति।

**मानस**

१४. बुद्धि. १५ अहंकार, १६. मन। १७ से २६ तक दस इन्द्रियाँ (५ ज्ञानेन्द्रियाँ, ५ कर्मेन्द्रियां), २७ से ३१ तक पाँच तन्मात्राएँ और ३२ से ३६ तक पञ्चभूत।

मन, बुद्धि, अहंकार और चित्त, ये अन्तःकरण चतुष्टय कहलाते हैं।

परा संवित्

शिव (प्रकाश) — शक्ति (विमर्श)

सदाशिव

महेश्वर

विद्या

कुण्डलिनी शक्ति का ऊर्ध्वगामिनी होकर सहस्रारस्थ परम-शिव में लीन होना ही लय-क्रम कहलाता है और उसका पुनः मूलाधार में लौट आना सृष्टिक्रम कहलाता है। आचार्यश्री यहाँ बता रहे हैं कि जब शक्ति का उत्थान होता है तो क्रमशः तत्वों का लय होकर अन्त में वह परा शक्ति भगवती अपने परा संवित् रूप में लय होकर परम शिव के साथ एक हो जाती है। यही शक्ति का वास्तविक स्वरूप (अथवा शरीर) है जो कि चन्द्रमा की कला रूप है (चन्द्रकला से यहाँ उसकी षोडशी कला अमा या सत्रहवीं कला अमृता दोनों लिये जा सकते हैं, जैसा कि पहले श्लोक में कहा गया है)।

यहाँ लय-क्रम बताते समय आचार्य तत्वों का लय इस प्रकार बता रहे हैं –

⟶पृथ्वी, जल, तेज, पवन, आकाश, ५ तन्मात्रा, १० इन्द्रियाँ, मानस (मन या अन्तःकरण चतुष्टय), माया, विद्या, महेश, शिव, परा संवित् (परम तत्व, परम शिव)।

कुण्डलिनी शक्ति जब चक्रों का वेध करती है तो क्रमशः तत्वों का लय होता है। मूलाधार के वेध से पृथ्वी तत्व का लय होता है, स्वाधिष्ठान के वेध से जल का, मणिपूर के वेध से तेज (अग्नि) का, हृदय चक्र के वेध से वायु का तथा विशुद्ध चक्र का वेध हो जाने पर आकाश तत्व का लय हो जाता है।

पाँचों तन्मात्रायें, दसों इन्द्रियां, बुद्धि तथा अहंकार—इन सब का संबंध मन से है, इसलिये आज्ञा चक्र का वेध होने पर इन सब का अहंकार में लय हो जाता है, क्योंकि आज्ञा चक्र मन का स्थान है। आज्ञा चक्र के ऊपर जब कुण्डलिनी शक्ति विभिन्न स्तरों पर पहुँचती है तो बाकी तत्वों का लय हो जाता है। आज्ञा चक्र से ऊपर योग के ग्रन्थों में ६ स्तर कहे गये हैं।

आचार्यश्री का यहाँ मानस से मन, बुद्धि, अहंकार तथा चित्त चारों से संकेत है क्योंकि ये चारों अन्तःकरण चतुष्टय कहलाते हैं। मानस के बाद आचार्यश्री माया कहते हैं। यहाँ माया शब्द प्रकृति, पुरुष, नियति, काल, राग, विद्या, कला तथा माया इन आठों का प्रतीक है क्यों कि ये आठों तत्व माया तत्व के आधीन हैं।

माया के बाद आचार्यश्री विद्या कहते हैं। विद्या तत्व से आचार्यश्री का संकेत शुद्ध विद्या तत्व की ओर है अर्थात् माया शुद्ध विद्या में लय हो जाती है। शुद्ध विद्या का लय महेश्वर अर्थात् ईश्वर तत्व में होता है एवं ईश्वर तत्व शिव अर्थात् सदाशिव में लय हो जाता है और फिर सदाशिव तत्व परम तत्व में विलीन हो जाता है। अथवा हम यह भी कह सकते हैं कि विद्या तत्व से आचार्यश्री का तात्पर्य सदाशिव, ईश्वर तथा शुद्ध विद्या—इन तीनों तत्वों से है क्योंकि ये तीनों तत्व विद्या तत्व के अन्तर्गत हैं। महेश शब्द से आचार्य श्री का संकेत शिव तथा शक्ति तत्व की ओर है क्योंकि ये दोनों तत्व शिव तत्व के अन्तर्गत हैं तथा शिव शब्द से आचार्यश्री का आशय परमशिव से हो सकता है। इन सब तत्वों का अतिक्रमण करके वह परा शक्ति अपने परा संवित् रूप में मिलकर चन्द्रमा की पर कला अर्थात् सत्रहवीं अमृता कला के रूप में विराजती है जो कि उसका वास्तविक शरीर अथवा रूप है। वाराहोपनिषत् अध्याय ५ में कहा है –

**प्रणवेन समुत्थाप्य श्रीबीजेन निवर्तयेत्।**
**स्वात्मानं च श्रियं ध्यायेत् अमृत प्लावनं ततः ॥३४**

ॐकार से श्री बीज तक श्री विद्या के सत्रह अक्षर हो जाते हैं अर्थात् सत्रहवीं कला ही पर कला है।

सहस्रार ही परम शिव का स्थान है, जैसा कि चतुर्थ श्लोक में कहा जा चुका है। इस विषय में वाराहोपनिषत् के पंचम अध्याय में कहा है –

**मूलाधारादि षट् चक्रं शक्ति स्थानमुदीरितम्।**
**कण्ठादुपरि मूर्धान्तं शाम्भवं स्थानमुच्यते ।।५३**

'चन्द्रमा की पर कला' विशेषण प्रयोग करने से यहाँ सत्रहवीं कला लेना ही उचित है। यहाँ पर आचार्यश्री ने परम तत्व सहित २६ तत्वों का वर्णन किया है।

इस विषय में सौभाग्य लक्ष्म्युपनिषत् का अन्तिम अध्याय अवलोकनीय है।

[ ६ ]

**कुमारी यन्मन्द्रं ध्वनति च ततो योषिद परा,**
**कुलं त्यक्त्वा❀ रौति स्फुटति च महाकाल× भुजगी।**
**ततः पातिव्रत्यं भजति दहराकाश कमले,**
**सुखासीना योषा भवसि भवसीत्कार रसिका ।।**

**सरल अर्थ**—कुमारी के रूप में जो मन्द-मन्द ध्वनि करती है और फिर (सामान्य) स्त्री की तरह कुल का त्याग करते हुए शब्द करती है, रोती है। जब वह महा काल भुजगी प्रस्फुटित होती है अर्थात् कुण्डलिनी शक्ति का पूर्ण जागरण होने पर वह हृदयाकाश कमल में पतिव्रत धर्म का भजन करती है और सुख-पूर्वक बैठकर भगवान् शङ्कर के सीत्कार की रसिक बन जाती है।

---

पाठान्तर– ❀काचित्। ×महाकाल पतगी तथा
महानील भुजगी।

**व्याख्या - यत्कुमारी मन्द्रयते यद्योषित्पतिव्रता।
अरिष्टं यत्किंच क्रियते, अग्निस्तदनुवेधति ॥**

यह ऋचा तैत्तिरीयारण्यक के प्रथम प्रपाठक के सत्ताईसवें अनुवाक् में आयी है। इसी ऋचा के आधार पर आचार्यश्री का यह श्लोक है। श्री लक्ष्मीधराचार्य ने अपनी सौन्दर्य लहरी की टीका में अरुणोपनिषद् से यह ऋचा ली है। इसकी व्याख्या करते हुए आचार्य लिखते हैं—

'कुण्डलिनी शक्ति की तीन अवस्थाएँ हैं—प्रथम मूलाधार में सोती हुई जो कुमारी के सदृश्य है। उस समय वह मन्द-मन्द स्वर करती है। कुण्डलिनी सर्पवत् है और सर्प सोते में मन्द-मन्द स्वर करता है। दूसरी युवती अवस्था है। कुण्डलिनी शक्ति जब मूलाधार से उठकर ऊपर जाती है तो विष्णु ग्रंथि पर्यन्त अर्थात् हृदय-कमल तक वह युवावस्था वाली होती है। इस अवस्था में वह कुल को छोड़ती हुई इस प्रकार रोती है जिस प्रकार युवती शादी के समय अपने मातृ-गृह को छोड़ती हुई रोती है। तीसरी अवस्था में सहस्रदल कमल में पहुँचकर सदा शिव के साथ मिलने पर वह पतिव्रता हो जाती है।'

**'अरिष्टं यत्किंच क्रियते'** का अर्थ श्री लक्ष्मीधराचार्य जी ने—'अमृत आस्वादन करती है'—लिया है। अरिष्ट का अर्थ सूतिकागृह भी होता है, इसलिये इस ऋचा का यह अर्थ भी लिया जा सकता है कि फिर वह सूतिका-गृह करती है अर्थात् पतिव्रता होने पर वह गर्भवती होकर मातृ-पद प्राप्त करती है या यों कहें कि वह फलवती होती है। इस अवस्था में साधक ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति करता है।

**'अग्निस्तदनुवेधति'** का अर्थ स्वाधिष्ठान चक्र में जो अग्नि है, उसका वेध होना लिया है। अर्थात् स्वाधिष्ठान चक्र का

वेध होने पर जब कुण्डलिनी शक्ति ऊर्ध्वगामिनी होती है, तब वह सहस्रार में जाकर अमृत का आस्वादन करती है।

यहाँ यह कहा जा सकता है कि जिस प्रकार स्त्री की तीन अवस्थाएँ—बालिका, युवति तथा पतिव्रता होती हैं, उसी प्रकार कुण्डलिनी शक्ति की भी तीन अवस्थाएँ होती हैं।

बालिका (अवस्था में स्त्री) जब समझने लगती है तो वह विवाह की इच्छा करने और नाना प्रकार के विचारों को संजोने लगती है, परन्तु वह इन इच्छाओं को व्यक्त नहीं करती (यही उसका मन्द-मन्द स्वर करना है)।

तरुणी हो जाने पर जब विवाह हो जाता है तो वह मातृ-गृह का त्याग करते समय रोती है, शोर करती है, किन्तु पति-गृह जाते समय रास्ते में वह नाना प्रकार के विचारों में खो जाती है और अपने पति के सहवास का आनन्द लेने लगती है। फिर पतिगृह में पहुँचकर वह गृह-स्वामिनी होकर अपने स्वामी के साथ एकरूप होकर पतिव्रता हो जाती है।

कुण्डलिनी शक्ति की भी इसी प्रकार तीन अवस्थाओं में अभिव्यक्ति होती है। बालिका के रूप में वह मूलाधार अर्थात् अपने कुलगृह में निवास करती है और वहाँ मन्द-मन्द स्वर करती रहती है। मन्द अर्थात् सुनाई न पड़ने वाला अथवा परा वाक् अर्थात् कुण्डलिनी शक्ति मूलाधार में परा वाक् रूपी होकर रहती है।

युवति रूप में कुण्डलिनी शक्ति मूलाधार का त्याग करके सहस्रार की ओर जाती है और उस समय वह अपने मातृ-गृह (कुल) का त्याग करती हुई रोती, चिल्लाती है। हृदय-कमल में आ जाने पर वह पतिव्रत धर्मपरायण होकर भगवान् शङ्कर (परम शिव) के मिलन के आनन्द की रसिक हो जाती है एवं

सहस्रार अर्थात् पतिगृह में पहुँच कर पूर्णरूपेण पतिव्रता हो जाती है अर्थात् परमशिव में लीन हो जाती है। यही शिव-शक्ति का मिथुन है।

हृदयाकाश (हृदय कमल) मानों उसके विश्राम करने का स्थान है (जिस प्रकार स्त्री पतिगृह जाती हुई रास्ते में विश्राम करती है)।

यहाँ यह भी कहा जा सकता है कि जब कुण्डलिनी शक्ति मूलाधार में रहती है तो वह परा वाक् रूपिणी होती है अर्थात् यहाँ नाद का स्तर सूक्ष्म अथवा मन्द होता है। मूलाधार से ऊपर अनाहत तक वह पश्यन्ति एवं मध्यमा वाक् रूपी रहकर विशुद्ध चक्र में आने पर वैखरी वाणी का रूप धारण करती है अथवा वैखरी रूप में नाद का विस्फोट होता है तथा सहस्रार में जाकर पुनः महा कारण बिन्दु में लीन हो जाती है। नाद का आदि स्रोत सहस्रार ही है। तैत्तिरीयारण्यक, प्रथम प्रपाठक, अनुवाक् ११ में कहा है—

**हसितं रुदितं गीतम् (५) वीणा पणव लासितम्**
**मृतं जीवं च यत्किंचित् अङ्गानि स्नेव विद्धि तत्।**

शक्तिपात् के बाद कुण्डलिनी शक्ति के जागरणोपरान्त साधक में विभिन्न प्रकार की क्रियाएँ होती हैं जिन में कि रोने, चिल्लाने, गाने आदि की क्रियाएँ भी होती हैं। यही कुण्डलिनी शक्ति का रोना आदि है।

जिस समय हृदय चक्र में साधक का ध्यान लग जाता है, उस समय वह आत्मा का दर्शन करता है और उसमें साधक को आनन्द आने लगता है। यही भगवती कुण्डलिनी शक्ति का सुख से बैठे हुए भव (शंकर=आत्मा) के सीत्कार की रसिका होना है। अथवा हृदय-कमल का वेध होने पर ही साधक के

साधन में दृढ़ता आती है और साधक का मन ब्रह्मानन्द का रसिक हो जाता है। साधक का मन हृदय चक्र का वेध होने पर जब एक बार ब्रह्मानन्द का लाभ कर लेता है तो वह बारम्बार उसी आनन्द को प्राप्त करना चाहता है। जिस प्रकार एक बार पति के मिलन का सुख अनुभव करने के पश्चात् स्त्री उसकी रसिका हो जाती है और बार-बार उस आनन्द को प्राप्त करना चाहती है, उसी प्रकार भगवती महा शक्ति कुण्डलिनी ब्रह्म में लीन होने के आनन्द की रसिका हो जाती है।

जिस समय हृदय-कमल का वेध होकर सूर्य ऊर्ध्व मुख होता है तो वह चन्द्रमण्डल पर अपनी किरणों का प्रकाश करता है जिससे अमृत का स्राव होता है और कुण्डलिनो शक्ति उस अमृत के पान से प्राप्त आनन्द की रसिका हो जाती है। यथा—

**शिवार्कमण्डलं भित्वा द्रायवन्तीन्दु मण्डलम् ।**
**तदुद्भूतामृतस्यन्दि परमानन्द नन्दिता ।**
**कुल योषित् कुलं त्यक्त्वा परं वर्षण मेत्य सा ॥**
**भैरवयामले वामकेश्वर महातन्त्रे बहुरूपाष्टक विद्यायां कथितम्**

सहस्रार में पहुँचने पर वह महा शक्ति शांति से बैठ जाती है अर्थात् उस महा कारण में लीन हो जाती है, जिस प्रकार पतिगृह में जाकर पतिव्रता स्त्री सुखपूर्वक वहीं रम जाती है। अथवा जब कुण्डलिनी शक्ति सहस्रार में पहुँच जाती है, तब सब क्रियायें बन्द हो जाती हैं तथा मन निर्विकल्प समाधि में लय हो जाता है।

यहाँ यह भी कहा जा सकता है कि शक्तिपात के मुख्य तीन भेद—मन्द, तीव्र एवं तीव्रतर ही कुण्डलिनी शक्ति के

तीन स्वरूप हैं जिन्हें क्रमशः कुमारी, तरुणी एवं प्रौढ़ा अवस्थायें कहा जा सकता है।

मन्द शक्तिपात में साधक शनैः-शनैः अग्रसर होता है एवं क्रमशः चक्रों का वेध होता है। तीव्र शक्तिपात में कुण्डलिनी शक्ति का जागरण होकर हृदय-चक्र का वेध हो जाता है और साधक साधन-परायण हो जाता है। साधक के सब संशयों का नाश होकर वह ब्रह्म की प्राप्ति के लिए आतुरतापूर्वक साधन में लग जाता है। तीव्रतर शक्तिपात में साधक उसी क्षण ब्रह्म-ज्ञान की प्राप्ति कर लेता है। यही शाम्भवी दीक्षा है। इसमें शक्ति एकदम सहस्रार में जाकर परम शिव में लीन हो जाती है।

[ ७ ]

**त्रिकोणं ते कौलाः कुलगृहमिति प्राहुरपरे,**
**चतुष्कोणं प्राहुः समयिन इमे बैन्दवमिति।**
**सुधासिन्धौ:* तस्मिन्सुरमणिगृहे सूर्यशशिनो-**
**रगम्ये रश्मीनां समयसहिते त्वं विहरसे× ॥**

सरल अर्थ—दूसरे (अर्थात् कौलाचार वाले), हे भगवती! त्रिकोण को ही तेरा कुलगृह कहते हैं और ये हम लोग अर्थात् समयाचार वाले चतुष्कोण को, जो कि बैन्दव स्थान है, तेरा कुलगृह (मानते हैं) कहते हैं जो कि अमृत के सागर में स्थित है और तेरा यह दिव्य मणियों का बना (सुर-मणि) घर सूर्य एवं चन्द्रमा की किरणों के लिये भी अगम्य है और तू यहाँ समय (शिव) सहित विहार करती है।

---

पाठान्तर—*सुधासिन्धोस्तस्मिन्। ×विहरसि।

श्रीचक्रम्

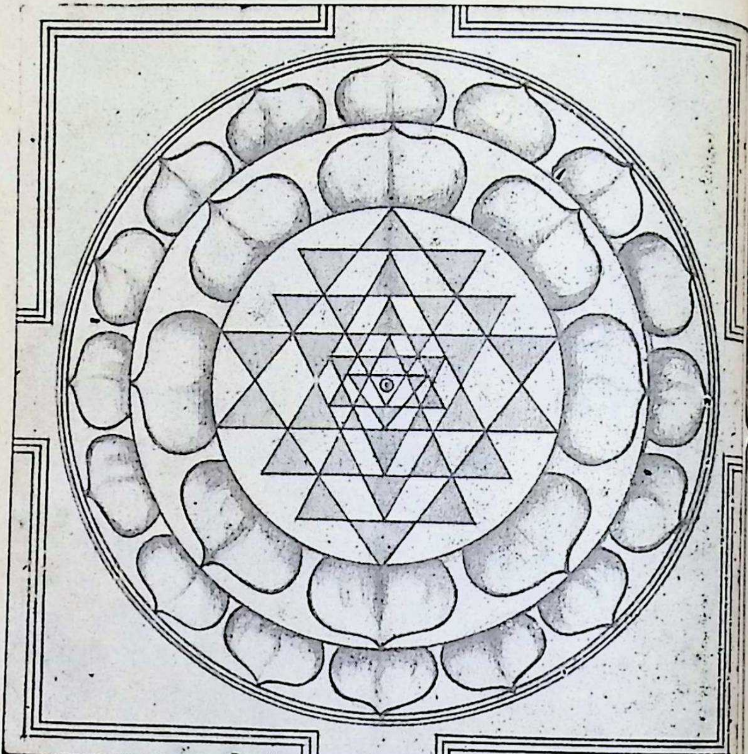

सृष्टियोगेन चक्रमिदम्

**व्याख्या**—कौल मार्गानुयायी त्रिकोणान्तर्गत बिन्दु को भगवती का स्थान मानते हैं तथा समयमार्गी चतुष्कोण के मध्य स्थित बिन्दु को भगवती का स्थान मानते हैं। यहाँ श्री चक्र का ज्ञान आवश्यक है, इसलिये श्री चक्र का चित्र सामने दिया जा रहा है।

कौल मतानुसार श्री चक्र में ९ त्रिकोण होते हैं जो ९ योनियाँ कहलाती हैं। इन ९ त्रिकोणों में से ५ शक्ति त्रिकोण नीचे की ओर मुख वाले होते हैं तथा ४ ऊर्ध्वमुख त्रिकोण शिव त्रिकोण कहलाते हैं। ऊपर का वर्णन सृष्टि-क्रमानुसार है। संहार-क्रम में शक्ति-त्रिकोण ऊर्ध्व मुख होते हैं और शिव-त्रिकोण अधोमुख होते हैं।

समय-मतानुसार श्रीचक्र की नौ योनियाँ नीचे लिखे अनुसार हैं—

(१) मध्य त्रिकोण, (२) अष्टार, (३) अन्तर्दशार, (४) बहिर्दशार, (५) चतुर्दशार, (६) अष्टदल पद्म, (७) षोडशदल पद्म, (८) तीन वृत्त एवं (९) भू पुर।

इनमें से प्रथम पांच शक्ति-चक्र तथा अन्तिम चार शिव चक्र कहलाते हैं। इस मत के अनुसार भू-पुर (चतुष्कोण) के अन्दर जो वृत्त है (अर्थात् तीन वृत्त, षोडशदल पद्म तथा अष्टदल पद्म) वही बिन्दु स्थान है और उसके मध्य में शक्ति का स्थान है अर्थात् शक्ति चक्र स्थित है।

षोडश दल पद्म चन्द्रमा का प्रतिनिधित्व करता है। चन्द्रमा का स्थान सहस्रार है अर्थात् चतुष्कोण सहस्रार है और उसके मध्य षोडशदल पद्म चन्द्रमण्डल है जो कि सुधा का समुद्र है। इस सुधा-सागर के मध्य में महा माया पारमी शक्ति कुण्डलिनी का निवास-स्थान है।

सूर्य एवं चन्द्रमा (इडा तथा पिङ्गला) की रश्मियों के लिये भी अगम्य है।

[ ८ ]

त्रिखण्डं ते चक्रं शुचि रविशशाङ्कात्मकतया,
मयूखैः षट्त्रिंशद्द्वशयुततया खण्ड कलितैः* ।
पृथिव्यादौ तत्वे पृथगुदितवद्भिः परिवृतं,
भवेन्मूलाधारात्प्रभृति× तव षट् चक्र सदनम् ।।

[ ९ ]

शतं चाष्टौ वह्नेः शतमपि कलाः षोडश रवेः,
शतं षट च त्रिंशत्सितमय*मयूखाश्चरणजाः ।
य एते षष्टिश्च त्रिशतमभवं स्त्वच्चरणजाः×,
महाकौलैस्तस्मान्न} हि तव शिवे कालकलना ।।

**सरल अर्थ**—हे भगवती ! तेरा चक्र (श्री चक्र, पुर अथवा नगर) अग्नि, सूर्य एवं चन्द्रात्मक सुन्दर तीन खण्डों वाला ३६० किरणों से युक्त है जिसकी ३६० किरणें पृथक्-पृथक् पृथ्वी आदि तत्वों में उदित होती हुई विभक्त होती हैं और उनके द्वारा तू आवृत है। इस प्रकार मूलाधार प्रभृति छः चक्रों वाला यह तेरा घर (होता) है।

---

पाठान्तर श्लोक ८—*मयूखैः षट्त्रिंशतयुतमाखण्ड कलितैः
तथा मयूखैः षट्त्रिंशच्छत युततया खण्ड कलितैः।
×भवेन्मूलाधारप्रभृति।

पाठान्तर श्लोक ९—*षट्त्रिंशद्द्वै (अथवा द्वे) सितमयि।
×चरणगा। } महाकालस्तमात्।

अग्नि की १०८, सूर्य की ११६ तथा चन्द्रमा की १३६ किरणों रूपी कला तेरे चरणों से उत्पन्न होने वाली ३६० किरणें हैं (यह तेरी चरण रज है), इसलिये, हे महाशिवे! कौल मार्गानुयायी आचार्य (महा कौल लोग) तेरे काल की कल्पना नहीं कर सकते (अथवा पाठान्तर के अनुसार—महाकाल स्वयं भी तेरे काल की कल्पना नहीं कर सकता अर्थात् तू महाकालातीता है)।

**व्याख्या**—इन दो श्लोकों में आचार्य कहते हैं कि मूलाधार आदि छः चक्रों वाला सुषुम्णा-पथ ही, हे भगवती! तेरा चक्र अर्थात् श्री चक्र है। इस प्रकार आचार्य यहां -'शरीर ही श्री चक्र है' यह प्रतिपादित कर रहे हैं और समयाचार वालों के लिये बाह्य पूजा का निषेध करते हैं, क्योंकि समयाचार वालों के लिये यह सुषुम्णा-पथ ही श्रीचक्र है।

इस चक्र के तीन खण्ड हैं—अग्नि, सूर्य तथा चन्द्र खण्ड। यथा—

**अग्नीषोमात्मकं चक्रमग्नीषोम मयं जगत्**
**अग्नावन्तर्वभौ भानुरग्नीषोम मयं स्मृत**
**त्रिखंडं मातृका चक्रं सोम सूर्यानलात्मकम् ॥**

—रुद्रयामले

सुष्मणान्तर्गत कुण्डलिनी के तीन खण्ड नीचे दिये अनुसार हैं—

अग्नि खण्ड —मूलाधार एवं स्वाधिष्ठान।
सूर्य खण्ड —मणिपूर तथा हृदय।
सोम खण्ड —विशुद्ध और आज्ञा।

इन तीनों खण्डों की कुल मिलाकर ३६० किरणें होती हैं

जिनके द्वारा यह पूरा चक्र आवृत है। इन में **अग्नि खण्ड की १०८ किरणें** निम्न प्रकार हैं—

मूलाधार में पृथ्वी की ५६ किरणें—

५ महाभूत, ५ तन्मात्राएँ, ५ कर्मेन्द्रिय, ५ ज्ञानेन्द्रिय, ४ अन्तः-करण चतुष्टय, १ कला, १ प्रकृति, १ महत्, १ पुरुष=कुल २८। यही २८ शिव-शक्ति-भेद से द्विगुणित अर्थात् ५६ हो जाती हैं।

स्वाधिष्ठान में जल की ५२ किरणें—

५ महाभूत, ५ कर्मेन्द्रिय, ५ ज्ञानेन्द्रिय, १० इन्द्रियों के कार्य, १ मन=कुल २६। यही शिव-शक्ति-भेद से द्विगुणित होकर ५२ हो जाती हैं।

## सूर्य खण्ड की ११६ किरणें—

मणिपूर में अग्नि की ६२ किरणें—

५ महाभूत, ५ तन्मात्राएँ, ५ कर्मेन्द्रियां, ५ ज्ञानेन्द्रियां, १० इन्द्रियों के कार्य, १ मन=कुल ३१। ये शिव-शक्ति-भेद से दुगुनी होकर ६२ हुईं।

हृदय चक्र में वायु की ५४ किरणें—

५ महाभूत, ५ तन्मात्राएँ, ५ कर्मेन्द्रियां, ५ ज्ञानेन्द्रियां, ४ अन्तः-करण चतुष्टय, १ कला, १ प्रकृति, १ पुरुष=कुल २७ जो शिव-शक्ति-भेद से ५४ हो जाती हैं।

## चन्द्र-खण्ड की १३६ किरणें—

विशुद्ध चक्र में आकाश तत्व की ७२ किरणें ( ३६ तत्व जो शिव-शक्ति-भेद से ७२ हो जाते हैं) तथा आज्ञा चक्र में ६४ किरणें जो शिव, शक्ति, सदाख्य तथा महेश्वर —इन चार तत्वों को छोड़कर बाकी बचे ३२ तत्वों के शिव-शक्ति-भेद से ६४ बनती हैं।

ये सब किरणें भगवती की चरण-रज से उत्पन्न कही हैं। भगवतो महा शक्ति इन सब से ऊपर बैन्दव स्थान (सहस्रार) में विराजती हैं, इसलिये नीचे के सब स्थान भगवती की चरण-रज द्वारा ही बने हैं।

किरणों के नाम सौन्दर्य लहरी की सौभाग्यवर्धनी टीका में १४वें श्लोक की व्याख्या में दिये हैं। मेरे परमपूज्य श्रीगुरुदेव स्वामी श्री विष्णुतीर्थ जी महाराज ने भी अपनी सौन्दर्य लहरी की भाषा-टीका में ये सब नाम दिये हैं।

यहाँ हम भगवती के इस चक्र को संवत्सरात्मक चक्र भी कह सकते हैं। एक संवत्सर में ३६० दिन रूपी किरणें होती हैं और ये ६ भाग अर्थात् ६ ऋतुओं में विभाजित हैं। इस विषय पर मेरे परम पूज्य गुरुदेव ने अपनी सौन्दर्य लहरी की भाषा टीका के पृष्ठ १२९ पर लिखा है—

'छः चक्रों से वर्ष की छः ऋतुओं की समानता की जाती है अर्थात् बसन्त की मूलाधार से समानता की जाती है क्योंकि इस ऋतु में पृथ्वी का वेध होकर पुष्प खिलते हैं और सुगन्ध का विकास होता है। ग्रीष्म ऋतु की स्वाधिष्ठान चक्र से समानता की जाती है, इस ऋतु में जल का वेध होकर जल सूखने लगता है। वर्षा की मणिपूर से समानता है, क्यों कि इस ऋतु में अग्नि का वेध होकर विद्युत और पर्जन्य का विकास होता है। शरद ऋतु की अनाहत चक्र से समानता की जाती है क्यों कि इसमें वायु का वेध होकर वातावरण शान्त, निर्मल हो जाता है। हेमन्त ऋतु की विशुद्ध चक्र से समानता है क्योंकि इस ऋतु में आकाश के वेध सूचक शीत की प्रधानता होती है और शिशिर ऋतु की आज्ञा चक्र से समानता की जाती है, क्योंकि इसमें चित्त की प्रसन्नता बढ़ती है। इस प्रकार उक्त

३६० किरणों की वर्ष की ३६० तिथियों से समानता यह सिद्ध करती है कि पिण्ड का संवत्सर पुरुष आधार है। कृष्ण और शुक्ल पक्षों को भी शक्ति-शिवात्मक समझना चाहिये। कृष्ण पक्ष में चन्द्रमा को अन्वय और शुक्ल पक्ष में उन्नेय भूमिका समझनी चाहिये। इसी प्रकार उत्तरायण और दक्षिणायन को सूर्य (प्राण) की उन्नेय और अन्वय भूमिकायें समझना चाहिये।'

कौल मार्ग वाले मूलाधार में ही भगवती का पूजन करते हैं, इसलिये, हे भगवती! वे तेरे इस किरणरूपी चक्र को नहीं जानते और इसलिये वे तेरे काल (संवत्सर रूपी चक्र) की कल्पना नहीं कर सकते अर्थात् वे तेरे इस संवत्सरात्मक रूप को नहीं जानते। यह संवत्सर भी अग्नि, सूर्य, सोमात्मक है। दिन सूर्यात्मक है, रात्रि-चन्द्रात्मक तथा सन्ध्या अग्न्यात्मक है।

यहाँ यह भी कहा जा सकता है कि यह ब्रह्माण्ड ही श्री चक्र है अथवा श्री चक्र ब्रह्माण्ड का प्रतीक है और यह शरीर ही श्रीचक्र है क्योंकि पिण्ड ही ब्रह्माण्ड है। जैसा कि कहा है—

महात्म्यमत्र रश्मीनां यामले भैरवाभिधे,
रहस्यमनुपृच्छन्त्यै पार्वत्यै शम्भुनोदितम्।
साधु-साधु महाभागे पृष्टं त्रैलोक्य सुन्दरि,
गुह्याद्गुह्यतमं ज्ञानं न कुत्रापि प्रकाशितम्।
कलाविद्या पराशक्तिः श्रीचक्राकार रूपिणी,
तन्मध्ये बैन्दव स्थानं तत्रास्ते परमेश्वरी।
सदाशिवेन संयुक्ता सर्वतत्वातिगामिनी,
चक्रं त्रिपुरसुन्दर्या ब्रह्माण्डाकारमीश्वरी।

पंचभूतात्मकं चैव तन्मात्रात्मकमेव च,
इन्द्रियात्मकमेवं च मनस्तत्वात्मकं तथा।
मायादितत्वरूपं च तत्वातीतं च बैन्दवम्,
बैन्दवे जगदुत्पत्तिस्थिति संहारकारिणी।

सदाशिवेन संपृक्ता तत्वातीता महेश्वरी,
ज्योतिरूपा निराकारा यस्या देहोद्भवाः शिवे।
किरणाश्च सहस्रं च द्विसहस्रं च लक्षकम्,
कोटिरर्बुदमेवैषां परा संख्या न विद्यते।

तामेवानुप्रविश्यैव भाति विश्वं चराचरं,
यस्या भासा महेशानि सर्वं विश्वं विभासते।
तद्भासा रहितं किंचिन्न च यच्च प्रकाशते,
तस्याश्च शिवशक्तेश्च चिदरूपायाश्वितं विना।

आन्ध्यमापद्यते नूनं जगदेतच्चराचरम्,
तेषामनन्तकोटीनां मयूखानां महेश्वरी।
मध्ये षष्ट्युत्तरं देवि त्रिशतं किरणाः शिवे,
ब्रह्माण्डं व्यश्नुवानास्ते सोमसूर्यानिलात्मना।

अग्नेरष्टोत्तरशतं षोडशोत्तरकं रवेः,
षट्त्रिंशदुत्तरशतं चन्द्रस्य किरणाः शिवे।
ब्रह्माण्डं भासयन्तस्ते पिण्डाण्डमपि शांकरी,
दिवा सूर्यस्तथा रात्रौ सोमो वह्निश्च संध्ययोः।

प्रकाशयन्तः कालांस्ते तस्मात्कालात्मास्त्रयः,
षष्ट्युत्तरं च त्रिशतं दिन्यान्येव तु हायने।

—भैरवयामले चन्द्रज्ञान विद्यायां

पृश्नयो नाम मुनयः सर्वे चक्रमुपाश्रिताः।
सेवमानाश्चक्रविद्यां देवगन्धर्व पूजिताम्॥

अग्नीषोमात्मकं चक्रमग्नीषोममयं जगत् ।
अग्नावन्तर्बभौ भानुरग्नीषोममयं स्मृतम् ॥
त्रिखण्डं मातृकाचक्रं सोमसूर्यनलात्मकम् ।
महालक्ष्म्याः पुरं चक्रं तत्रैवास्ते सदाशिवः ॥

—रुद्रयामले

चतुर्भिः शिवश्चक्रैश्च❀ शक्तिचक्रैश्च× पंचभिः ।
नव चक्रैश्च संसिद्धं शिवयोर्वपुः ॥
त्रिकोणमष्टकोणं च दशकोणद्वयं तथा ।
चतुर्दशारं चैतानि शक्ति चक्राणि पंच च ॥
बिन्दुश्चाष्टदलं पद्मं पद्मं षोडशपत्रकम् ।
चतुरश्रं च चत्वारि शिवचक्राण्यनुक्रमात् ॥
त्रिकोणे बैन्दवं श्लिष्टमष्टारेऽष्टदलाम्बुजम् ।
दशारयोः षोडशारं भूगृहं भुवनाश्रके ॥
शैवानामपि शाक्तानां चक्राणां च परस्परम् ।
अविनाभावसंबन्धं यो जानाति स चक्रवित् ॥
त्रिकोणमष्टकोणं च दशकोण द्वयं तथा ।
मनुकोणं चतुष्कोणं कोणचक्राणि षट् क्रमात् ॥
मूलाधारं तथा स्वाधिष्टानं च मणिपूरकम् ।
अनाहतं विशुद्धाख्यमाज्ञाचक्रं विदुर्बुधाः ॥
नवाधार स्वरूपाणि कोणचक्राणि पार्वति ।
त्रिकोण रूपिणि शक्तिर्बिन्दुरूपः शिवः स्वयम् ।
अविनाभावसंबन्धस्तस्माद्बिन्दुत्रिकोणयोः ॥

—भैरवयामले चन्द्रज्ञान विद्यायां

अथवा यों भी कहा जा सकता है कि यह श्रीचक्र सूर्यात्मक, सोमात्मक तथा अनलात्मक है।

---

पाठान्तर—❀शिवरूपैश्च । ×शक्तिरूपैश्च ।

श्रीचक्र में ४३ त्रिकोण हैं एवं सूर्य की १२ कला, १२ नित्या, १२ राशियाँ, ३ वेद तथा चारों स्वरों का योग भी ४३ होने से यह सूर्यात्मक है।

चन्द्रमा की १६ कलाओं तथा २७ नक्षत्रों का योग ४३ होने से यह सोमात्मक होता है।

त्रिकोण स्वयं अग्नि का स्थान है एवं उसके मध्य में विराजित बिन्दु अग्नि है। अष्टार अष्टमूर्ती आठ प्रकार की अग्नि का द्योतक है। अन्तर्दशार अग्नि की दश कलाओं का, बहिर्दशार दश विभूतियों का द्योतक है एवं चतुर्दशार १४ भुवन बताता है। इस प्रकार यह अनलात्मक भी है।

[ १० ]

**त्रिकोणं चाधारं त्रिपुरतने* तेऽष्टारमनघे,**
**भवेत्स्वाधिष्ठानं× पुनरपि दशारं मणिपुरम्।**
**दशारं ते संवित्कमलमथ मन्विश्रकमुमे,**
**विशुद्धं स्यादाज्ञा शिव इति ततो बैन्दव गृहम्॥**

**सरलार्थ**—(श्री चक्र के मध्य का) त्रिकोण मूलाधार है और, हे निष्पाप सुन्दरी! महा त्रिपुरा (त्रिपुर जिसका शरीर है अथवा तीन खण्डों या तीन पुर वाला जिसका शरीर है) (श्री चक्र का) अष्टार जो है, वह स्वाधिष्ठान है और अन्तर्दशार (मणिपूर तथा बाह्य दशार अनाहत (हृदय) चक्र है। चतुर्दशार, हे उमा! विशुद्ध चक्र है और आज्ञा चक्र शिव का स्थान या शिव-चक्र है जिस में कि बैन्दव स्थान है।

---

पाठान्तर. *त्रिभुवननुतेऽष्टारमनघे अथवा त्रिभुवननुतेष्टारमनघे। ×तव स्वाधिष्ठानं भगवति।

**व्याख्या**—पहले तीन खण्डों (सूर्य, सोम, अग्नि खण्ड) का षट् चक्र से एक्य बताकर या प्रकृति और संवत्सर रूपी श्रीचक्र बताकर अब आचार्यश्री श्रीचक्रान्तर्गत विभिन्न चक्रों का एक्य बताते हैं।

सप्तम श्लोक की व्याख्या में बताये अनुसार श्रीचक्र नवयोन्यात्मक है जिसकी नौ योनियाँ या चक्र इस प्रकार हैं—

(१) त्रिकोण (२) अष्टार (३) अन्तर्दशार (४) बहिर्दशार (५) चतुर्दशार (६) अष्टदल पद्म (७) षोडश दल पद्म (८) तीन वृत्त एवं (९) भू पुर।

ऊपर वर्णित नौ चक्रों में से प्रथम पाँच शक्ति चक्र कहलाते हैं तथा अन्तिम अर्थात् बाहर के चार शिव चक्र कहलाते हैं। इन में से जो चतुष्कोण भू पुर है, वह सहस्रार है तथा तीनों वृत्त बैन्दव स्थान है।

इस श्लोक में आचार्यश्री श्रीचक्र की देह में भावनात्मक एकता बता रहे हैं। प्रथम पाँच शक्ति चक्र क्रमशः मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर, हृदय (संवित्) तथा विशुद्ध चक्र हैं। आज्ञा तथा इससे ऊपर के स्थान शिव चक्र हैं। शिव चक्रों के प्रथम दो चक्र अर्थात् अष्टदल एवं षोडश दल पद्म चन्द्रमा के द्योतक हैं और आज्ञा चक्र चन्द्रमा का स्थान है। षोडश दल पद्म के सोलह दल चन्द्रमा की सोलह कलाओं को बताते हैं। आज्ञा चक्र और उससे ऊपर के स्थान चन्द्रमा के स्थान माने जाते हैं। भू पुर सहस्रार है तथा तीनों वृत्त बैन्दव अर्थात् सहस्रारस्थ चन्द्रमा का स्थान है जो कि चन्द्रमा की अमृता (सत्रहवीं) कला का द्योतक है।

इस प्रकार आचार्यश्री कहते हैं कि समय मार्ग वालों के लिये यह सुषुम्णा मार्ग ही श्रीचक्र है और इसी श्रीचक्र की

ऊपर बताये अनुसार अन्तर्भावनापूर्वक पूजा करनी चाहिये। जिसने इस प्रकार देह में श्रीचक्र को जान लिया है, उसे बाह्य-पूजा की आवश्यकता नहीं रहती और यही समय मार्ग का मूल है। सुषुम्णा मार्ग ही मोक्ष का मार्ग है, जैसा कि कहा है—

**'सुषुम्ना तिसृषु श्रेष्ठा वैष्णवी मुक्तिमार्गदा।'**

[ ११ ]

**त्रिकोणे ते वृत्तत्रितयमिभकोणे वसुदलं,**
**कलाश्रं मिश्रारे भवति भुवनाश्रे च भुवनम्*।**
**चतुश्चक्रं शैवं निवसति भगे× शाक्तिकमुमे,**
**प्रधानैक्यं षोढा भवति च तयोः शक्ति शिवयोः॥**

**सरल अर्थ**—त्रिकोण जो है वह तीन वृत्त हैं और इभ कोण अर्थात् अष्टार जो है वह अष्टदल पद्म है, षोडश दल पद्म दशार युग्म है तथा भूपुर चतुर्दशार है। इस प्रकार इन चार शिव-चक्रों में, हे उमा! पाँच शक्ति योनियाँ अर्थात् चक्र निवास करते हैं। शक्ति तथा शिव के प्रधान-प्रधान ऐक्य से यह ऐक्य छः प्रकार का हो जाता है।

**कठिन शब्द—इभ कोणे**=इभ का अर्थ हाथी या गज होता है। गज से आचार्य का संकेत यहाँ दिग्गजों से है। दिग्गज आठ की संख्या के द्योतक हैं और यहां यह इसी अर्थ में प्रयोग किया गया है। इसलिये इभ कोणे का अर्थ अष्टार होता है।

**वसुदलं**=वसु आठ हैं, इसलिये यहाँ इस शब्द का भी संख्या-सूचक प्रयोग है। इस प्रकार वसुदल का अर्थ अष्टदल होता है अर्थात् अष्टदल पद्म।

---

पाठान्तर—*त्रिभुवनम्। ×दशे।

**कलाश्रं**=कला सोलह हैं और कला का संख्या-सूचक प्रयोग होने से यहाँ इस शब्द का अर्थ षोडशदल पद्म होता है।

**भुवनाश्रे**=भुवन १४ हैं और यहाँ इस शब्द का प्रयोग संख्या बताने के लिये है, इसलिये इसका अर्थ चतुर्दशार हुआ।

**भुवनम्**=इस शब्द से यहाँ पृथ्वी अर्थात् भू-पुर की ओर संकेत है।

**व्याख्या** यह शरीर ही श्रीचक्र है अर्थात् सुषुम्ना-पथ ही श्रीचक्र है। यह बताने के बाद अब आचार्यश्री शिव और शक्ति का एक्य प्रतिपादन कर रहे हैं। आचार्य श्री कहते हैं कि जो शिव है, वही शक्ति है या जो शक्ति है वही शिव है अर्थात् यह परमा शक्ति ही ब्रह्म है और यह बताने के लिये श्री चक्रान्तर्गत शिव-चक्रों तथा शक्ति-चक्रों का एक्य बता रहे हैं।

पहले बताये अनुसार शक्ति चक्र या योनियाँ पाँच हैं जो कि इस प्रकार हैं—

(१) त्रिकोण, (२) अष्टार, (३) अन्तर्दशार, (४) बहिर्दशार एवं (५) चतुर्दशार तथा शिव के चार चक्र ये हैं— (१) अष्टदल पद्म, (२) षोडशदल पद्म, (३) तीन वृत्त एवं (४) भू-पुर। शक्ति तथा शिव-चक्रों का एक्य बताते हुए आचार्य श्री यहाँ इन की एक-दूसरे से समानता बताते हैं जो कि नाचे दिये अनुसार है—

त्रिकोण=तीन वृत्त
अष्टार =अष्टदल पद्म
अन्तर तथा बहिर्दशार=षोडश दल पद्म
चतुर्दशार =भू-पुर

आचार्यश्री कहते हैं कि प्रधान रूप से शक्ति तथा शिव का ऐक्य छः प्रकार से होता है। इस ऐक्य के छः प्रकार वे अगले श्लोक में बताते हैं।

[ १२ ]

**कलायां बिन्द्वैक्यं तदनु च तयोर्नादविभवे,**
**तयोर्नादेनैक्यं तदनु च कलायामपि तयोः।**
**तयोर्बिन्दावैक्यं त्रितयविभवैक्यं परशिवे,**
**तदेवं* षोढैक्यं भवति हि सपर्या समयिनाम् ॥**

**सरल अर्थ**—कला में बिन्दु का ऐक्य, उस के बाद इन दोनों का नाद के विभव में ऐक्य, फिर उन दोनों का नाद में ऐक्य, और उसके बाद फिर दोनों का कला से ऐक्य, और फिर दोनों का बिन्दु से ऐक्य, और फिर तीनों के विभव का परशिव में ऐक्य—इस प्रकार यह छः प्रकार का ऐक्य होता है और यही समयाचार वालों की पूजा है।

**व्याख्या**—ग्यारहवें श्लोक में आचार्य ने जो छः प्रकार का ऐक्य कहा है, वही अब आचार्य बता रहे हैं। यह छः प्रकार का ऐक्य इस प्रकार है—

(१) कला का बिन्दु से ऐक्य और इन दोनों का नाद के विभव से ऐक्य।
(२) नाद का कला तथा बिन्दु से ऐक्य।
(३) कला का नाद तथा बिन्दु से ऐक्य।
(४) कला, विन्दु तथा नाद का परशिव से ऐक्य।
(५) नाद, कला तथा बिन्दु का परशिव से ऐक्य।
(६) कला, नाद तथा बिन्दु का परशिव से ऐक्य।

---

पाठान्तर=तथैवं।

इस श्लोक का अर्थ समझने के लिये श्लोक १३ का अर्थ भी आवश्यक है क्योंकि उसमें आचार्यश्री ने नाद, कला आदि शब्दों के अर्थ स्पष्ट किये हैं। अतः इस श्लोक की विस्तृत व्याख्या १३वें श्लोक के साथ ही की जा रही है।

[ १३ ]

**कला नादो बिन्दुः क्रमश इह वर्णाश्च चरणं,**
**षडब्जं चाधार प्रभृतिकममीषां च मिलनम्।**
**तदेवं* षोढैक्यं भवति खलु येषां समयिनां,**
**चतुर्धैक्यं तेषां भवति हि सपर्या समयिनाम्॥**

**सरल अर्थ**—कला, नाद तथा बिन्दु क्रमशः वर्ण, चरण एवं छः कमल अर्थात् मूलाधार इत्यादि षट्चक्र हैं और इनका मिलन ही समयाचार वालों का छः प्रकार का ऐक्य है। उन का चार प्रकार का ऐक्य भी समयाचार वालों की पूजा-पद्धति है।

**व्याख्या**—आचार्यश्री कहते हैं कि **कला** का अर्थ वर्ण है। वर्ण से हम यहाँ दो प्रकार के अर्थ ले सकते हैं—

(१) वर्ण अर्थात् जिनसे श्री विद्या बनती है, वे वर्ण नौ हैं जो नीचे अनुसार हैं—
क, ऐ, ई, ल, ह, र, स, ‿ नाद, ⊙ बिन्दु।

(२) वर्णमाला के अक्षर।

**नाद** का अर्थ चरण है। चरण शब्द से आचार्यश्री का संकेत वाक् तथा उसके चार चरण अर्थात् परा, पश्यन्ति, मध्यमा तथा वैखरी वाक् से है। वाक् ही नाद है। चरण

---

पाठान्तर=*तथैवं।

का अर्थ पाद लेने से नाद ब्रह्म का भी द्योतक हो जाता है क्योंकि श्रुति में ब्रह्म के भी चार पाद कहे हैं। चरण शब्द से हम श्रीविद्या अथवा गायत्री के चार चरण भी ले सकते हैं। श्रीविद्या के चारों चरण अर्थात् कूट या पाद पहले बताये जा चुके हैं, किन्तु सुविधा के लिए हम यहाँ फिर दे रहे हैं— (१) वाग्भव, (२) कामराज, (३) शक्ति तथा (४) तूर्य। गायत्री के चार पद तो सर्वविदित हैं। श्रीविद्या का तूर्य कूट एकाक्षरी बीज है। इसकी अन्तिम अवस्था तुर्यातीत है जहाँ उच्चारण सम्भव नहीं है अर्थात् मन्त्र महा नाद में विलीन हो जाता है।

बिन्दु का अर्थ मूलाधार आदि छः चक्र हैं। इन सब का छः तथा चार प्रकार से एक्य है।

**छः प्रकार का एक्य—**

(१) शिव तथा शक्ति का मूलाधार आदि छः में से प्रत्येक चक्र में साम्य होने से यह एक्य छः प्रकार का होता है। इस विषय पर ३८वें श्लोक में आगे कहा गया है। सौन्दर्य लहरी में भी शङ्कराचार्य भगवान् ने श्लोक ३४ से ४१ तक इस विषय का वर्णन किया है जो कि लक्ष्मीधरा व्याख्या तथा मेरे गुरुदेव कृत भाषा-व्याख्या में अच्छी तरह निरूपित किया गया है। अथवा

(२) श्लोक १२ में वर्णित छः प्रकार का एक्य। अथवा

(३) मन्त्र, यन्त्र, देवता, साधक, गुरु तथा परम शिव का एक-दूसरे से एक्य। अथवा

(४) श्रीविद्या का षटचक्रों से एक्य, छः चक्रों का शक्ति से एक्य, छः चक्रों का श्री यन्त्र से एक्य, श्रीविद्या

एवं श्री चक्र का शक्ति से एक्य, श्रीविद्या तथा श्री यन्त्र का छः चक्रों से एक्य तथा शक्ति का परम शिव से एक्य भी छः प्रकार का एक्य है। अथवा

(५) मन्त्र एवं मातृकाओं का एक्य, मातृका तथा श्री चक्र का एक्य, मन्त्र और नित्याओं का एक्य, मातृका तथा नित्याओं का एक्य, मन्त्र एवं चक्र का एक्य और नित्याओं तथा चक्र का एक्य। (श्लोक २१ देखिये)।

**चार प्रकार का एक्य—**

(१) आधार आदि छः चक्रों का श्री चक्र से एक्य।

(२) बिन्दु स्थान का बैन्दव स्थान अथवा सहस्रार से एक्य। बिन्दु शिवात्मक है, यथा—

**बिन्दुः शिवात्मको बीजं शक्तिर्नादस्तयोर्मितः।**
**समवायः समाख्यातः सर्वागम विशारदैः॥**

अर्थात् शक्ति और शिव का एक्य क्योंकि श्री चक्र का बिन्दु स्थान भगवती का स्थान है।

(३) मल तथा आवरण रहित जीव का शिव से एक्य अथवा साधक तथा शिव अथवा शक्ति का एक्य।

(४) श्री यन्त्र एवं मन्त्र का एक्य। अथवा

(१) मातृका एवं मन्त्र का एक्य,

(२) मन्त्र एवं चक्र का एक्य,

(३) चक्र तथा नित्याओं का एक्य,

(४) नित्याओं तथा तिथियों का एक्य।

(श्लोक २१ देखिये)

**कला का बिन्दु से एक्य अर्थात् वर्णों का चक्रों से एक्य—**
यहाँ पर केवल श्रीविद्या के वर्णों का छः चक्रों से एक्य बताया

जा रहा है, क्योंकि यदि वर्णमाला के सभी वर्णों आदि का सम्बन्ध छः चक्रों से बताया जाय तो एक अलग ही पुस्तक बन सकती है। जिज्ञासु पाठक इस विषय में यदि जानना चाहें तो षट्चक्र-निरूपण, मेरे गुरुदेव कृत सौन्दर्य लहरी की टीका आदि देखें। इस विषय पर अंग्रेजी में भी एक ग्रन्थ मेरे देखने में आया है जिसका नाम—'Anatomy of Alphabet and Comparative Study of Literature' है। यह पुस्तक स्वामी श्री शंकरानन्द जी द्वारा लिखित तथा उन्हीं के द्वारा ४०८, शनिवार पेठ, पूना–२ से प्रकाशित है तथा श्री वी० आर० शिगरे द्वारा सर्वोदय मुद्रणालय, ४५०-बुधवारा, पूना–२ में छापी गई है।

स्वामी श्री शंकरानन्द जी ने अपनी उपरोक्त पुस्तक में 'अक्षरों का चक्रों से सम्बन्ध' विषय पर यथेष्ठ प्रकाश डाला है। आपने अपनी पुस्तक में बताया है कि किस प्रकार हर अक्षर में सब तत्वों का समावेश है और उनकी कितनी-कितनी कलायें अथवा किरणें हर अक्षर में हैं। हम उस पुस्तक से इस विषय की एक तालिका आगे उद्धृत कर रहे हैं।

**श्रीविद्या के वर्णों का चक्रों से तथा श्रीचक्र से एक्य—**

**ल** कार—शिव-वाच्य है तथा भूमी-वाच्य भी है। भूमि-वाच्य होने से यह श्रीचक्रान्तर्गत भू पुर को इंगित करता है तथा शिव-वाच्य होने से सहस्रार (शिव के स्थान) को बताता है अर्थात् लकार सहस्रार का द्योतक है।

**स** कार –शक्ति तथा चन्द्र का द्योतक है। चन्द्रमा-वाच्य होने से यह षोडश दल पद्म को बताता है तथा शक्ति-वाचक होने से यह आज्ञा चक्र को इंगित करता है क्योंकि आज्ञा चक्र

सदाख्य तत्व या अर्धनारीश्वर का स्थान है जो कि शक्तिमय शिव का स्थान है।

ह कार—आकाश तथा शंकर का द्योतक है। 'परमेव्योमन्' आदि श्रुति के अनुसार व्योम ब्रह्म का स्थान है। शंकर (रुद्र) अष्टमूर्ति है, इसलिये यह अक्षर श्री चक्र में अष्टदल पद्म तथा शरीर में आज्ञा चक्र को बताता है।

ई कार—यह माया वाचक है। माया चौदह भुवनों की स्वामिनी है, अतः यह श्री चक्र के चतुर्दशार का और शरीर में विशुद्ध चक्र का द्योतक है।

ऐ कार – यह विष्णु-योनी होने से विष्णु-स्वरूपा है, इसलिये भगवान् के १० अवतारों का द्योतक होने से श्रीचक्र के बहिर्दशार को तथा शरीर में अनाहत चक्र को बताता है जो कि विष्णु का स्थान है।

र कार—अग्नि को बताता है जिसके १० कोण या जिह्वा हैं, इसलिये यह श्री चक्र के अन्तर्दशार का द्योतक है तथा शरीर में मणिपूर को बताता है जो कि अग्नि का स्थान है।

क कार—काम तथा शिव का द्योतक है शिव अष्टमूर्ति है, इसलिये यह श्री चक्र के अष्टार का द्योतक है तथा शरीर में स्वाधिष्ठान कामदेव का स्थान होने से यह स्वाधिष्ठान की ओर इंगित करता है।

‿ अर्धमात्रा - त्रिकोण अथवा योनि की द्योतक है। यह श्री चक्र के त्रिकोण को तथा शरीर में मूलाधार को बताती है। मूलाधार नाद का स्थान है, अतः यह नादरूपा है।

⊙ बिन्दु—यह शशि, सोम, कला निधि, चेतना, शिव, पूर्ण, अमृताकर्षिणी, शून्य, व्योम आदि के लिये प्रयुक्त होता है।

# अक्षरों में तत्वों का समावेश तथा चक्रों से सम्बन्ध

| चक्र | वर्ण | तत्व और उनकी किरणें | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| | | पृथ्वी | जल | अग्नि | वायु | आकाश | मन | योग |
| | ह | २८-०० | २६-०० | ३१-०० | २७-०० | ३६-०० | ३२-०० | १८०-०० |
| आज्ञा | क्ष | २८-०० | २६-०० | ३१-०० | २७-०० | ३६-०० | ३२-०० | १८०-०० |
| | योग | ५६-०० | ५२-०० | ६२-०० | ५४-०० | ७२-०० | ६४-०० | ३६०-०० |
| विशुद्ध | अ | ३-५० | ३-२५ | ३-८७५ | ३-३७५ | ४-५० | ४-०० | २२-५० |
| | बाकी १५ स्वरों की किरणों की संख्या भी इसी प्रकार है। १६ स्वरों का योग नीचे दिया है। | | | | | | | |
| | योग | ५६-०० | ५२-०० | ६२-०० | ५४-०० | ७२-०० | ६४-०० | ३६०-०० |
| | क | ४-५० | ४-७५ | ५-०० | ४-५० | ६-०० | ५-२५ | ३०-०० |
| | ख | ४-५० | ४-७५ | ५-०० | ४-५० | ६-०० | ५-२५ | ३०-०० |
| | ग | ५-०० | ४-२५ | ५-०० | ४-५० | ६-०० | ५-२५ | ३०-०० |
| | घ | ४-५० | ४-२५ | ५-५० | ४-५० | ६-०० | ५-२५ | ३०-०० |
| | ङ | ४-५० | ४-२५ | ५-५० | ४-५० | ६-०० | ५-२५ | ३०-०० |
| अनाहत | च | ४-५० | ४-२५ | ५-५० | ४-५० | ६-०० | ५-२५ | ३०-०० |
| | छ | ४-५० | ४-२५ | ५-५० | ४-५० | ६-०० | ५-२५ | ३०-०० |
| | ज | ५-०० | ४-२५ | ५-०० | ४-५० | ६-०० | ५-२५ | ३०-०० |
| | झ | ४-५० | ४-२५ | ५-०० | ४-५० | ६-०० | ५-७५ | ३०-०० |
| | ञ | ४-५० | ४-२५ | ५-०० | ४-५० | ६-०० | ५-७५ | ३०-०० |
| | ट | ५-०० | ४-२५ | ५-०० | ४-५० | ६-०० | ५-७५ | ३०-०० |
| | ठ | ५-५० | ४-२५ | ५-०० | ४-५० | ६-०० | ५-७५ | ३०-०० |
| | योग | ५६-०० | ५२-०० | ६२-०० | ५४-०० | ७२-०० | ६४-०० | ३६०-०० |
| | ड | ५-७५ | ५-२५ | ६-५० | ५-०० | ७-०० | ६-५० | ३६-०० |
| | ढ | ५-७५ | ५-२५ | ६-५० | ५-०० | ७-०० | ६-५० | ३६-०० |
| | ण | ५-७५ | ५-२५ | ६-५० | ५-०० | ७-०० | ६-५० | ३६-०० |
| | त | ५-७५ | ५-२५ | ६-५० | ५-०० | ७-०० | ६-५० | ३६-०० |
| मणिपूर | थ | ५-५० | ५-२५ | ६-०० | ५-७५ | ७-०० | ६-५० | ३६-०० |
| | द | ५-५० | ५-२५ | ६-०० | ५-७५ | ७-०० | ६-५० | ३६-०० |
| | ध | ५-५० | ५-२५ | ६-०० | ५-७५ | ७-०० | ६-५० | ३६-०० |
| | न | ५-५० | ५-२५ | ६-०० | ५-७५ | ७-०० | ६-५० | ३६-०० |
| | प | ५-५० | ५-०० | ६-०० | ५-७५ | ८-०० | ६-०० | ३६-०० |
| | फ | ५-५० | ५-०० | ६-०० | ५-७५ | ८-०० | ६-०० | ३६-०० |
| | योग | ५६-०० | ५२-०० | ६२-०० | ५४-०० | ७२-०० | ६४-०० | ३६०-०० |
| | ब | १०-०० | ८-५० | १०-०० | ९-०० | १२-०० | १०-५० | ६०-०० |
| | भ | ९-०० | ९-५० | १०-०० | ९-०० | १२-०० | १०-५० | ६०-०० |
| स्वाधि- | म | ९-०० | ८-५० | ११-०० | ९-०० | १२-०० | १०-५० | ६०-०० |
| ष्ठान | य | ९-०० | ८-५० | १०-०० | ९-०० | १२-०० | १०-५० | ६०-०० |
| | र | ९-०० | ८-५० | ११-०० | ९-०० | १२-०० | १०-५० | ६०-०० |
| | ल | १०-०० | ८-५० | १०-०० | ९-०० | १२-०० | १०-५० | ६०-०० |
| | योग | ५६-०० | ५२-०० | ६२-०० | ५४-०० | ७२-०० | ६४-०० | ३६०-०० |
| | व | १४-०० | १३-०० | १५-५० | १३-५० | १८-०० | १६-०० | ९०-०० |
| | श | १४-०० | १३-०० | १५-५० | १३-५० | १८-०० | १६-०० | ९०-०० |
| मूलाधार | ष | १४-०० | १३-०० | १५-५० | १३-५० | १८-०० | १६-०० | ९०-०० |
| | स | १४-०० | १३-०० | १५-५० | १३-५० | १८-०० | १६-०० | ९०-०० |
| | योग | ५६-०० | ५२-०० | ६२-०० | ५४-०० | ७२-०० | ६४-०० | ३६०-०० |

यह श्री चक्र में बैन्दव स्थान अर्थात् त्रिवृत्त को तथा देह में सहस्रार को बताता है।

भगवान् दुर्वासा प्रणीत त्रिपुरा महिम्न के २८वें श्लोक को टीका करते हुए टीकाकार ज्ञानार्णव के आधार पर नीचे लिखा वर्णन देते हैं—

'ल'—लकारः पृथिवी बीजं तेजो भू बिम्बमुच्यते।

'स'—सकारश्चन्द्रमा भद्रे कलाषोडशात्मकः।
तस्मात् षोडश पत्रं च।

'ह'—हकारः शिव उच्यते, अष्टमूर्तिः सदाभद्रे।
तस्माद्वसुदलं भवेत्।

'ई'—इकारस्तु सदा माया भुवनानि चतुर्दश,
पालयन्ती परात्साच्छक्र कोणं भवेत् प्रिये।

'ऐ'—शक्तिरेकादशस्थाने स्थित्वा सूते
जगत् त्रयम् विष्णोर्योनिरिति ख्याता।
सा विष्णोर्दशरूपकम् एकारात्
परमेशानी चक्र व्याप्य व्यवस्थिता।।

'र'—दशकोण करं तस्मात् प्रकारो ज्योतिराख्यः।
कला दशान्वितो वह्निर्दशकोण प्रवर्तकः।।

'क'—ककारान्मदनो देवि शिवं चाष्ट स्वरूपकं।
योनिवश्यं तदा चक्रं वसुयोन्यङ्कितं भवेत्।।

'⌣'—अर्ध मात्रा गुणान् सूते नाद रूपा यत स्मृतः
त्रिकोण रूपा योनिस्तु।

'⊙'-बिन्दुना—बैन्दव भवेत्।
कामेश्वर स्वरूपं तद्विश्वाधार स्वरूपकम् श्रीचक्रन्तु-
र्विय सम्भवमिति।

यह ऐक्य नीचे दिये प्रकार से भी दर्शाया जा सकता है—
कला=वर्ण—का ऐक्य—बिन्दु अथवा चक्र से।

ल—पृथ्वी तत्व का अक्षर है—मूलाधार—पृथ्वी तत्व
क—जल का द्योतक है — स्वाधिष्ठान—जल तत्व
र—अग्नि तत्व का अक्षर — मणिपूर—अग्नि तत्व
ई—चौथा स्वर — हृदय —चौथा चक्र
ऐ—वाणी को बताता है — विशुद्ध —वाणी का स्थान (वैखरी वाक्)
⌣तथा ⊙—अर्धेन्दु तथा चन्द्र—आज्ञा—चन्द्रमा का स्थान
**स**—शक्ति या सोम का द्योतक—सहस्रार—शक्ति का तथा चन्द्रमा का भी स्थान, अथवा
**स**—अमृत —सहस्रार—अमृत का स्थान
ह—गगनमण्डल का सूचक अथवा शिव का सूचक —सहस्रार—गगन-मण्डल तथा परम शिव का स्थान

अथवा

**ल**—पृथ्वी—यह सबकी जन्मदात्री माता है अर्थात् योनी है=त्रिकोण=मूलाधार
**क** प्रथम अक्षर, प्रथम अवस्था—त्रिकोणों का पहला प्रसार—अष्टार=स्वाधिष्ठान
**र**—अग्नि - अग्नि की १० जिह्वाएँ होती हैं—अन्तर्दशार=मणिपूर
**ई**—विष्णु की माया—१० रूपा—प्रमुख दस अवतारों के कारण—बहिर्दशार=अनाहत
**ऐ**—विश्व योनी या भुवन योनी—भुवन १४ होने से—चतुर्दशार=विशुद्ध

वाणी रूप से यह विशुद्ध को बताता है

| | | |
|---|---|---|
| ‿—अर्ध चन्द्र — अष्ट दल पद्म | } आज्ञा | |
| स—सोम-चन्द्र मण्डल—षोडशदल पद्म | | |

⊙—बैन्दव स्थान (बैन्दव)—अथवा वृत्त=त्रिवृत्त= सहस्रारस्थ चन्द्रमण्डल

ह—शिव—शिव का स्थान चतुष्कोण=भूपुर=सहस्रार

**कला (वर्ण) का नाद (चरण) से ऐक्य—**

ह कार शिव-वाच्य है तथा स कार शक्ति वाचक है। शक्ति और शिव का मिलन अथवा मिथुन ही नाद को उत्पत्ति का कारण है। बिन्दु नाद की प्रथम अवस्था है और अर्ध चन्द्रमा बिन्दु का पहला प्रसार अर्थात् काम कला है। इस अवस्था में नाद प्रकट होने को है। **ल** कार पृथ्वी सूचक है, पृथ्वी से भूतों की उत्पत्ति होती है, इसलिए वह कारणस्वरूप है और यह नाद की 'परा' अवस्था है। **क** वर्गाद्य होने से प्रथम स्फोट का द्योतक है, **र** अग्नि का द्योतक है और अग्नि शक्ति का कारण है। यह प्रथम स्फोट की शक्ति है, इसलिये **क** तथा **र** 'पश्यन्ति' वाक् को बताते हैं। **ई** इच्छा का द्योतक है जिसका वाक् के साथ संयोग होने से 'मध्यमा' वाक् का उदय होता है तथा **ऐ** वाक् सूचक है जो कि 'वैखरी' वाक् को दर्शाता है।

**बिन्दु (चक्रों) का नाद से ऐक्य—**

आचार्य लक्ष्मीधर ने सौन्दर्य लहरी के ४१वें श्लोक की टीका में इस पर प्रकाश डाला है—

| बिन्दु (चक्र) | | नाद | | श्री चक्र के भाग |
|---|---|---|---|---|
| (१) मूलाधार | = | परा | = | त्रिकोण |
| (२) स्वाधिष्ठान | = | पश्यन्ति | = | अष्टार |
| (३) मणिपूर-हृदय | = | मध्यमा | = | दशार द्वय |

(४) विशुद्ध = वैखरी =चतुर्दशार
(५) आज्ञा = नाद तथा नादान्त=शिव चतुष्कोण
(६) सहस्रार = नादविन्दुकलातीतं=भगवती त्रिपुर सुन्दरी (परा संवित्)

यहाँ यह एक्य हमने केवल तालिका रूप से दर्शाया है। अधिक जानकारी के लिये पाठकगण सौन्दर्य लहरी की लक्ष्मीधरा टीका देखें।

[ १४ ]

**तडिल्लेखामध्ये स्फुरति मणिपूरे भगवती,**
**चतुर्धैक्यं तेषां भवति च चतुर्बाहुरुदिता।**
**धनुर्बाणानिक्षूद्भव कुसुमजानङ्कुशवरं,**
**तथा पाशं बिभ्रत्युदित रविबिम्बाकृतिरुचिः॥**

**सरल अर्थ**—मणिपूर में भगवती बिजली की रेखा के मध्य में स्फुरित होती है। उनका चार प्रकार का एक्य होता है और भगवती चतुर्भुज रूप में उदित होती है। उन चार हाथों में वह इक्षु का बना धनुष, पुष्पों के बने बाण (पाँच), श्रेष्ठ अंकुश तथा पाश लिये हुए है और उनकी कान्ति उदित होते हुए सूर्य के बिम्ब के सदृश्य अर्थात् अरुण रंग की है।

**व्याख्या**—जब साधक को चार प्रकार के एक्य का ज्ञान हो जाता है अर्थात् जब वह गुरु-कृपा-कटाक्ष से शक्ति के चार प्रकार के एक्य जान लेता है, तब वह विद्यु त्-प्रकाश-

पुञ्ज की आभा वाली अथवा विद्युत्-प्रकाश-पुञ्ज से आवृत वह भगवती प्रत्यक्ष होती है। उस समय भगवती का रूप चतुर्भुज होता है और वह अपने चारों हाथों में धनुष, बाण, पाश तथा अंकुश धारण किये रहती है। यह गुरु-कृपा-कटाक्ष द्वारा ही सम्भव है। जब गुरुदेव कृपा करके महावेध दीक्षा देते हैं, तब वह महादेवी भगवती मणिपूर में प्रत्यक्ष रूप में प्रकट होती है। इस विषय में श्री लक्ष्मीधराचार्य लिखते हैं—

**'गुरु कटाक्षसंजात महावेध महिम्ना च भगवती झटति मूलाधार स्वाधिष्ठानात्मक चक्रद्वयं भित्वा मणिपूरे प्रत्यक्षं प्रतिभाति।'**

यहाँ—'मणिपूर में प्रकट होना'—कहने से आचार्यश्री का तात्पर्य यह है कि समयाचार वालों को नीचे के दो चक्रों में पूजन का निषेध है, क्योंकि मूलाधार एवं स्वाधिष्ठान दोनों अन्धकारमय हैं। मूलाधार अन्धतामिस्र है और स्वाधिष्ठान सूर्य की किरणों के सम्पर्क में होने से मिश्र लोक है। मणिपूर अग्नि का स्थान है। यहाँ स्थित मेघ रूपी जल सूर्य की किरणों से प्रतिबिंबित है, इसलिये यह भी मिश्र लोक ही है, परन्तु नीचे के दोनों चक्रों की अपेक्षा यहाँ अधिक प्रकाश है। अनाहत चक्र ज्योतिर्लोक है क्योंकि वह सूर्य का स्थान है। इस प्रकार अनाहत चक्र तक अन्धतामिस्र, मिश्र और ज्योति-लोक हैं तथा विशुद्ध चक्र चन्द्र लोक है। आज्ञा चक्र चन्द्रमा का स्थान होने से अमृत लोक है। विशुद्ध से नीचे के लोकों में चन्द्रमा की ज्योत्स्ना नहीं होती। सहस्रदल कमल ज्योत्स्ना का निवास है अथवा यह ज्योत्स्ना लोक है। सहस्रदल स्थित चन्द्र नित्य कला से युक्त है।

सुषुम्ना स्थित छः चक्र तथा सहस्रार ही श्रीचक्र है, जैसा

कि श्लोक १० में कहा गया है। आज्ञा चक्रस्थ चन्द्र में पन्द्रह कलायें हैं और सोलहवीं कला प्रतिफलित होती है। सोलहवीं कला सहस्रारस्थ चन्द्र में है जिसका प्रकाश आज्ञाचक्रस्थ चन्द्रमा पर पड़ता है तथा आज्ञाचक्रस्थ चन्द्रमा के प्रकाश से विशुद्ध चक्र आलोकित होता है।

यहाँ यह भी कहा जा सकता है कि मूलाधार तथा स्वाधिष्ठान चक्रों की शक्तियां प्रवृत्ति की ओर ले जाती हैं, इसलिये इन चक्रों में उपासना अर्थात् कुण्डलिनी शक्ति का ध्यान त्याज्य है। कुण्डलिनी शक्ति के चार स्तर हैं—अधः, मध्य, ऊर्ध्व एवं परा। 'अधः शक्ति' जीव को संसार में प्रवृत्त करती है। मूलाधार एवं स्वाधिष्ठान चक्र प्रजनन शक्ति तथा देहिक कार्यों से सम्बन्धित हैं। साधारणतः मनुष्य इन्हीं में उलझा अथवा बंधा रहता है। इनसे ऊपर का स्तर अर्थात् 'मध्य शक्ति' बौद्धिक स्तर है जिसमें मनुष्य की विचारणा शक्ति उसके कार्यों का नियन्त्रण करती है। इस स्तर पर बुद्धिजीवी मनुष्य रहते हैं। तीसरा स्तर आध्यात्मिक अर्थात् 'ऊर्ध्व शक्ति' है जो मनुष्य को आध्यात्मिकता की ओर ले जाती है। अन्तिम अथवा चतुर्थ स्तर 'शिव भाव' है और यही 'परा शक्ति' है। आचार्यश्री का ध्येय तो मोक्ष की ओर ले जाना ही है, इसलिए वे नीचे के मूलाधार एवं स्वाधिष्ठान दोनों चक्रों को त्याज्य बताते हैं। आचार्यश्री निवृत्ति मार्ग का साधन बता रहे हैं, इसलिये नीचे के दोनों चक्रों में पूजन का निषेध कर रहे हैं क्योंकि वे प्रवृत्ति की ओर ले जाते हैं।

भगवती की चार भुजाएँ मानों चार प्रकार का ऐक्य दर्शा रही हैं। भगवती महामाया रूप में जीवों के बन्धन का

कारण है। वह अपने आयुधों द्वारा आत्म तत्व को बांधकर जीव बनाये हुए है। ललिता सहस्रनाम में कहा है—

**उद्यभानुसहस्राभां चतुर्बाहु समन्विता।**
**राग स्वरूप पाशाढ्या क्रोधाकाराङ्कुशोज्ज्वला ॥१॥**
**मनोरूपेक्षुकोदण्डा पंचतन्मात्र सायका।**
**निजारुण प्रभापूर मज्जद्ब्रह्माण्ड मण्डला ॥३॥**

अर्थात् राग रूपी पाश, क्रोध रूपी अंकुश, मन रूपी धनुष तथा पाँच तन्मात्रा रूपी बाणों के द्वारा भगवती महामाया पुरुष का आखेट करती है अर्थात् जीव को बन्धन में बांधती है।

भगवान् श्री शङ्कराचार्य जी ने इसी श्लोक के आधार पर अपनी सौन्दर्य लहरी के सप्तम श्लोक में भगवती का ध्यान बताया है। उस पर टीका करते हुए मेरे परम पूज्य गुरुदेव ने बड़ा ही सुन्दर विवेचन किया है। जिज्ञासु पाठक श्री १००८ श्री स्वामी विष्णुतीर्थ जी महाराज विरचित सौन्दर्य लहरी की हिन्दी टीका पृष्ठ ९३ से ९७ तक देखें।

तन्त्रराज के वासना पटल में कहा है—

**मनोभवेदिक्षुधनुः पाशोराग उदीरितः।**
**द्वेषः स्यादङ्कुशः पंच तन्मात्रा पुष्प सायकाः ॥**

भावनोपनिषत् भी कहता है—

**शब्द स्पर्श रूप रस गन्धाः पंच तन्मात्राः पंच पुष्प बाणा मन इक्षु धनुः वश्यो बाणो रागः पाशः। द्वेषोऽङ्कुशः।**

उत्तर चतुःशती में इस विषय में लिखा है—

**इच्छा शक्तिमयं पाशं मङ्गल ज्ञान रूपिणम्।**
**क्रिया शक्ति मये बाण धनुषी दधदुज्ज्वलम् ॥**

त्रिपुरा महिम्न की टीका में टीकाकार ने पृष्ठ ८७ पर इस विषय पर सुन्दर प्रकाश डाला है। महामुनि श्री दुर्वासाकृत

त्रिपुरा महिम्न पर श्री राजगुरु कुलमार्तण्ड पंडित योगीन्द्रकृष्ण दोर्गादत्ति शास्त्रीकृत हिन्दी टीका देखें जो श्री पीताम्बरा पीठ संस्कृत परिषद् द्वारा प्रकाशित की गई है।

भगवती के आयुधों का वर्णन करते हुए महामुनि दुर्वासा अपने त्रिपुरामहिम्न स्तव में लिखते हैं—

**अथ तव धनुः पुण्ड्रेक्षुकृत प्रसिद्ध मतिद्युति,**
**त्रिभुवन वधुभूद्यज्ज्योत्स्ना कलानिधि मण्डलम् ॥**
**सकल जननि स्मारंस्मारं गतः स्मरतां नरस्त्रिभुवन,**
**वधु मोहाम्भोधे प्रपूर्ण विधुभवेत ॥४१**

**प्रसून शर पंचक प्रकट जृम्भणा गुम्फितं,**
**त्रिलोकमवलोकयत्यमल चेतसा चिन्तयन् ।**
**अशेष रमणी जन स्मर विजृम्भणे यः सदा,**
**पदुर्भवति ते शिवे त्रिजगदङ्गनाक्षोभणे ॥४२**

**पाशं प्रशंरित महासुमति प्रकाशो,**
**योवा तव त्रिपुर सुन्दरि सुन्दरीणाम् ।**
**आकर्षणेऽखिलवशीकरणे प्रवीणं,**
**चिते दधाति स जगत्त्रयवश्यकृत् स्यात् ॥४३**

**य स्वान्ते कलयति कोविदत्रिलोक-**
**स्तम्भरम्भणचणमत्युदार वीर्यम् ।**
**मातस्ते विजय महांकुशं सयोषान,**
**देवान स्तम्भयति च भूभुजोऽन्य सैन्यम् ॥४४**

**चापध्यानवशाद्भवोद्भव महामोहस्य व्युज्जृम्भणम्,**
**प्रख्यातं प्रसवेषुचिन्तनवशात्तत्तच्छ्रव्यं सुधीः ।**
**पाश ध्यान वशातसमस्तजगतां मृत्योर्वशत्व,**
**महादूर्ग स्तम्भमहाङ्कुशस्य मननान्माया ममेयां तरेत् ॥४५**

[ १५ ]

**भवेत्यैक्यं षोढा भवति भगवत्याः समयिनां,**
**मरुत्वत्कोदण्डद्युतिनियुतभासा समरुचिः।**
**भवत्पाणिव्रातो दशविध इतीदं मणिपुरे,**
**भवानि प्रत्यक्षं तव वपुरूपास्ते नहि परम्॥**

—इत्यैक्यनिरूपणम्

**सरल अर्थ**—एक्य होने पर भगवती समयाचार वालों को छः प्रकार की हो जाती है और मणिपूर में इन्द्र-धनुष की द्युति से युक्त प्रभा एवं दश प्रकार के हाथों के समूह वाली हो जाती है। हे भवानी! तेरे (इस प्रकार के) प्रत्यक्ष शरीर की उपासना करते हैं, निश्चय ही किसी दूसरे की नहीं।

**व्याख्या**—जब समयाचार का साधक छः प्रकार का एक्य जान लेता है तब--'चक्र ही भगवती है'-यह ज्ञान हो जाता है और इस प्रकार का ज्ञान हो जाने पर इन्द्र-धनुष की आभा युक्त भगवती दश भुजा रूप में मणिपूर चक्र में प्रकट होती है। मणिपूर चक्र के दश दल ही भगवती की दश भुजायें हैं तथा चक्र भगवती का शरीर है। मणिपूर में जल मेघों के रूप में रहता है, क्योंकि स्वाधिष्ठान स्थित जल मणिपूर स्थित अग्नि द्वारा तप्त होने पर वाष्प रूप में परिणित होकर मेघ वनता है। इसी कारण से मणिपूर को जल तत्व का स्थान भी कहा जाता है। इन मेघों पर अनाहत चक्र स्थित सूर्य की किरणें पड़कर इन्द्र-धनुष के रूप में चमकती हैं।

दश भुजा के विषय में यह भी कहा जा सकता है कि छः तथा चार प्रकार का एक्य ही भगवती की दश भुजायें हैं।

यहाँ तक एक्य-निरूपण पूर्ण हुआ।

[ १६ ]

**भवानि श्री हस्तैर्वहसि फणिपाश सृणिमथो,**
**धनुः पौण्ड्रं पौष्पं शरमथ जपस्त्रक्शुकवरौ ।**
**अथ द्वाभ्यां मुद्रामभयवरदानैकरसिकां* ;**
**क्वणद्वीणां द्वाभ्यां त्वमुरसि कराभ्यां च विभृषे ॥**

**सरल अर्थ**—हे भवानी ! तू अपने श्री हाथों में नाग का पाश, अंकुश, पौण्ड्र का धनुष, पुष्पों के बाण, जप की माला, श्रेष्ठ शुक लिये है तथा तेरे दो हाथ वर और अभय मुद्रा में हैं और दो हाथों से तू छाती के पास क्वण-क्वण करती हुई वीणा को धारण करती है ।

**व्याख्या**—श्लोक पन्द्रह में भगवती की दश भुजा कही गई हैं । अब आचार्यश्री उन के आयुध बता रहे हैं । भगवती अपनी छः भुजाओं में तो पाश, अंकुश, धनुष, बाण, जपमाला तथा शुक लिये हैं । शेष चार भुजाओं में से दो हाथों से भगवती वीणा वजा रही हैं और दो हाथ वर तथा अभय मुद्रा में हैं ।

पाश, अंकुश, धनुष तथा बाण के विषय में श्लोक चौदह की व्याख्या में लिखा जा चुका हैं । जप-माला जप के महत्व को बता रही है । योग सूत्र में कहा है—**'जपात् सिद्धिः'**—तथा भगवान् स्वयं गीता अध्याय १०. श्लोक २५ में कहते हैं—**'यज्ञानां जप यज्ञोऽस्मि'** ।

---

पाठान्तर—*रसिके ।

**शुक**– जीव भाव का सूचक है।

**अभय मुद्रा**—भगवती अपने भक्तों को अभय दान दे रही हैं। जो साधक एक बार परम करुणामयी माँ की शरण में आ जाता है, वह सब प्रकार के भयों से मुक्त हो जाता है। भगवान् अपने भक्तों की हमेशा रक्षा करते हैं—

**आवत देखि सक्ति अति घोरा। प्रनतारति भंजन पन मोरा॥**
**तुरत विभीषन पाछें मेला। सन्मुख राम सहेऊ सोइ सेला॥**

—तुलसीकृत रामायण, लंका काण्ड

**वर मुद्रा**—इस के द्वारा यह ज्ञात होता है कि भगवती अपने भक्तों को हर प्रकार का वरदान देती हैं।

**वीणा**—वीणा वाक् की द्योतक है जो यह बताती है कि भगवती कुण्डलिनी शक्ति का जागरण होने पर नाद का प्रादुर्भाव होता है और साधक को नाद-श्रवण होने लगता है। वीणा संगीत की सूचक है, कुण्डलिनी शक्ति के जागरण के पश्चात् गायन आदि की क्रियायें होती हैं। साधक अनेक प्रकार की राग-रागिनियाँ गाने लगता है अथवा भगवती की उपासना से साधक संगीत में प्रवीण हो जाता है।

यह भी कहा जा सकता है कि महामाया रूप में माँ भगवती जहाँ एक ओर पाश, अंकुश, धनुष तथा बाणों से शुक रूपी जीव को मोहित किये हुए हैं, वहीं दूसरी ओर वह जीवों को अभय देती हैं अर्थात् 'संसार से घबराना नहीं चाहिये'—यह शिक्षा दे रही हैं क्योंकि इस कार्य-क्षेत्र में ही जीव अपने कार्यों से मोक्ष प्राप्त कर सकता है। इस कार्य के लिए जब हम माँ के श्रीचरणों में चले जाते हैं, तब वे साधकों के मार्ग को भय-रहित करके उन्हें वर प्रदान करती हैं। यदि साधक जप-साधन

में लगा रहे तो वह नाद-श्रवण का अधिकारी बन जाता है। जप-माला और वीणा मन को वश में या एकाग्र करने के दो प्रमुख साधनों की ओर संकेत करती हैं (१) जप, (२) संगीत-साधन (भगवद् स्तुति, भजन आदि का गायन, कीर्तन आदि)।

अथवा हम यह भी कह सकते हैं कि पाश द्वारा इन्द्रिय-संयम की ओर संकेत है तथा अंकुश मन रूपी हाथी को वश में करने की ओर इंगित करता है। धनुष प्रणव है, बाण आत्मा है और जपमाला प्रणव-जप की ओर संकेत करती है। शुक जीव भाव बताता है तथा वीणा नाद की द्योतक है। अर्थात् मन को वश में करके संयमपूर्वक जो प्रणव के जप-रूपी धनुष पर आत्मा रूपी बाण चढ़ाता है, वह जीव नाद-मार्ग का अनुसरण करके मुक्त हो जाता है। श्रुति कहती है—

**धनुर्गृहीत्वौपनिषदं महास्त्रं शर ह्युपासानिनिशितं सन्धयीत।**
**आयम्य तद्भावगतेन चेतसा लक्ष्यं तदेवाक्षरं सोम्य विद्धि ॥३॥**

**प्रणवो धनुः शरोह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते।**
**अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत् ॥४॥**

—मुण्डकोपनिषत्, द्वितीय मुण्डक, द्वितीय खण्ड

[ १७ ]

**त्रिकोणैरष्टारं त्रिभिरपि दशारं समुदभू-**
**द्दशारं भूगेहादपि च भुवनाश्रं समभवत्।**
**ततोऽभून्नागारं नृपतिदलमस्मात्त्रिवलय,**
**चतुर्द्वाः* प्राकारत्रितयमिदमेवाम्ब शरणम्× ॥**

**सरल अर्थ**—त्रिकोण, त्रिकोणों का बना अष्टार, त्रिकोणों

---

पाठान्तर—*चतुर्धा। × चरणम्।

का ही दशार, फिर इस नीचे के दशार के बाद दशार तथा चतुर्दशार होते हैं. फिर अष्ट दल पद्म, षोडश दल पद्म तथा तीन वलय और फिर चार द्वार वाला त्रिरेखांकित प्राकार है। हे माँ ! यह तेरा शरण-स्थल (रहने का स्थान अथवा गृह) है।

**कठिन शब्द** - **भून्नागारं**—भूः नागार—भूः नागः=दिग्गज= यह आठ की संख्या सूचक है।

**नृपतिदल**—नृपति शब्द का प्रयोग सोलह की संख्या सूचक है, इसलिये यह षोडश दल के लिये प्रयोग किया गया है।

**व्याख्या**—ऊपर के श्लोकों में भगवती महात्रिपुर सुन्दरी के स्वरूप का वर्णन तथा उनका विभिन्न प्रकार का ऐक्य बताकर आचार्य अब श्रीचक्र का वर्णन करते हैं। श्रीयन्त्र-निर्माण की विधि मेरे गुरुदेव ने अपनी सौन्दर्य लहरी की हिन्दी टीका में दी है। संस्कृत की कई टीकाओं में भी श्रीचक्र-निर्माण-विधि दी है, ग्रन्थ-विस्तार-भय से हम यहाँ पर नहीं दे रहे हैं। प्रस्तार तथा पृष्ठ भेद से श्रीयन्त्र तीन-तीन प्रकार का है—

प्रस्तार भेद—(१) मेरु प्रस्तार, (२) कैलाश प्रस्तार, (३) भू-प्रस्तार।

यह विषय सौन्दर्य लहरी के ३१वें श्लोक की टीका करते हुए आचाय श्री लक्ष्मीधर ने विस्तारपूर्वक दिया है। जिज्ञासु पाठक वहाँ देखें।

पृष्ठ भेद—(१) भू पृष्ठ यन्त्र - यह समतल होता है। (२) कूर्म पृष्ठ—यह यन्त्र कछुवे की तरह होता है। (३) मेरु पृष्ठ—यह पर्वताकार उभरा हुआ होता है जो कि पिरामिड या शंकु सदृश्य होता है।

[ १८ ]

**चतुः षष्टिस्तन्त्राण्यपि कुल मतं निन्दितमभू-**
**द्यदेतन्मिश्राख्यं* मतमपि भवेन्निन्दितमिह ।**
**शुभाख्याः पञ्चैताः श्रुतिसरणिसिद्धाः प्रकृतयो ,**
**महाविद्यास्तासां भवति परमार्थो× भगवती ॥**

**सरल अर्थ** - हे माँ भगवती ! ६४ तन्त्रों में भी कुल मत (कौल मत) की निन्दा की है और फिर इससे निकला हुआ मिश्र मार्ग भी निन्दित होता है (हो जाता है)। शुभा नामक यह पांच जो है, वह श्रुति-मार्ग द्वारा सिद्ध है। उनकी प्रकृति रूपी यह महा विद्या ही परमार्थ देने वाली है।

**व्याख्या**—इस श्लोक में आचार्य अब कौल मार्ग तथा मिश्र मार्ग को त्याज्य बता रहे हैं। शुभागम पंचक, जो समयाचार का प्रतिपादन करने वाले पाँच ग्रन्थ हैं, वे श्रुति सम्मत हैं अर्थात् समयाचार ही श्रुति-सम्मत मार्ग है। यहाँ आचार्य 'श्रीविद्या' का श्रुतिसम्मत होना बता रहे हैं। यह कहना इसलिए आवश्यक है कि कुछ लोग श्रीविद्या की उपासना को केवल तांत्रिक उपासना मानते हैं। यह वेद-प्रतिपादित श्रीविद्या की उपासना ही मोक्ष की देने वाली है और श्रुतिसम्मत होने से यही मार्ग (समाचार) उपास्य है।

शुभागम पंचक—वसिष्ठ, सनक, शुक, सनन्दन एवं सनत्-

---

पाठान्तर—*कुलनुतं निन्दितमिदं तदेतन्मिश्राख्यं ।
×परमार्था ।

कुमार द्वारा कहे गये हैं और ये वैदिक मार्ग के अनुसार अनुष्ठान, पूजा इत्यादि का निरूपण करते हैं।

चौंसठ तन्त्रों के नाम आदि अनेक ग्रन्थों में दिये हैं। मेरे परम पूज्य गुरुदेव ने भी अपनी सौंदर्य लहरी की हिन्दी टीका में ये नाम दिये हैं।

[ १९ ]

**स्मरो मारो मारः स्मर इति परो* मारमदन-**
**स्मरानङ्गाश्चेति× स्मर मदन माराः स्मर इति।**
**त्रिखण्डः खण्डान्ते कलित भुवनेश्यक्षरयुत-**
**श्चतुः पञ्चार्णास्ते त्रय इति च पञ्चाक्षर मनुः॥**

**सरल अर्थ** स्मर, मारो, मारः तथा स्मर, फिर पर (स्मर), मार, मदन, स्मर एवं अनङ्ग, तदनन्तर स्मर, मदन तथा मार को याद करें। इस प्रकार ये तीन खण्ड हुए। फिर इन खण्डों के अन्त में (पाँच वर्ण वाला) सुन्दर भुवनेश्वरी बीज, इस प्रकार ये चार, पाँच और तीन अक्षर,—पाँच-पाँच अक्षर के मन्त्र बनते हैं।

**व्याख्या**—यहाँ आचार्यश्री अब 'श्रीयंत्र' बताने के बाद श्रीविद्या बता रहे हैं। इस मन्त्र में तीन खण्ड होते हैं—पहले खण्ड में चार अक्षर होते हैं, दूसरे खण्ड में पाँच तथा तीसरे खण्ड में तीन और प्रत्येक खण्ड के अन्त में भुवनेश्वरी बीज होता है जिसमें पांच वर्ण होते हैं तथा सबसे अन्त में पांच वर्ण वाला मन्त्र होता है। मन्त्र में आने वाले अक्षरों को आचार्य ने गुप्त सांकेतिक शब्दों द्वारा बताया है। भुवनेश्वरी बीज में

---

पाठान्तर—*स्मरो। ×श्चैते। १ कलित भुवने ते क इति यः।

आने वाले पाँच वर्ण इस प्रकार हैं—ह, र, ई, ‿ तथा ⊙।
इसी प्रकार अन्तिम मन्त्र भी पाँच अक्षरों से बनता है।

षोडशी अर्थात् 'श्रीविद्या' का उपदेश गुरु-मुख से लेना चाहिये। यह मन्त्र हम यहाँ प्रकट नहीं कर रहे हैं।

मन्त्र के प्रत्येक खण्ड में पांच-पाँच अक्षर होने से प्रत्येक खण्ड पञ्चाक्षर मनु बन जाता है। यद्यपि द्वितीय कूट में छः अक्षर होते हैं, किन्तु उसका अन्तिम भुवनेश्वरी बीज तृतीय कूट के साथ जोड़ा जाता है और इस प्रकार प्रत्येक कूट ५-५ अक्षर का हो जाता है।

[ २० ]

**त्रिखण्डे त्वन्मन्त्रे शशिसवितृवह्न्यात्मकतया,**
**स्वराश्चन्द्रे लीनाः सवितरि कला कादय इह।**
**यकाराद्या वन्हावथ कषयुगं वैन्दवगृहे,**
**निलीनं सादाख्ये शिवयुवति नित्यैन्दवकले॥**

**सरल अर्थ**—हे माँ! तेरा मन्त्र सोम, सूर्य, अनलात्म—तीन खण्डों वाला है। स्वर (उस में प्रयुक्त) जो हैं, वे चन्द्रात्मक हैं और वर्ण क आदि सूर्यात्मक हैं। य वर्ग अग्नि-आत्मक है अथवा य वर्ग के वर्ण अग्नि-आत्मक हैं। क ष की जोड़ी अर्थात् 'क्ष' बैन्दव-गृह है। हे शिव युवति! सादाख्य तत्व में लय होकर या समाकर तू वहाँ चन्द्रमा की नित्य कला-स्वरूप में विराजती है।

**व्याख्या**—आचार्यश्री यहाँ पर 'श्रीविद्या' के तीन खण्डों को बता रहे हैं। श्लोक ८ में श्रीचक्र के तीन खण्ड बताये गये थे जो कि सोम, सूर्य एवं अनलात्मक थे। अब आचार्य यन्त्र

तथा मन्त्र का ऐक्य दर्शाने के लिये यहां मन्त्र के भी तीन खण्ड बता रहे हैं जो कि सोम, सूर्य एवं अनलात्मक हैं। मन्त्र में प्रयुक्त अक्षरों में स्वर चन्द्र रूप, क आदि वर्ण सूर्य रूप तथा य वर्ग के अक्षर अग्नि-आत्मक हैं और मन्त्र का अन्तिम (कूट) खण्ड बैन्दव स्थान है। क्ष कार यहाँ पर अक्षरों के अन्तिम वर्ग का आदि अक्षर होने से अन्तिम कूट की ओर संकेत करता है। क्ष कार का अर्थ आकाश भी लिया जा सकता है और आकाश का गुण शब्द होने से यह नाद का भी सूचक है अर्थात् मन्त्र में प्रयुक्त नाद (बिन्दु तथा अर्धेन्दु) बैन्दव स्थान है।

**मन्त्र, यन्त्र तथा सुषुम्नान्तर्गत चक्रों का ऐक्य**

| नाम खण्ड | श्री यन्त्र के भाग | सुषुम्नान्तर्गत चक्र | मन्त्र के कूट | मन्त्र के अक्षर |
|---|---|---|---|---|
| सोम | चतुर्दशार, अष्टदल तथा षोडशदल पद्म | विशुद्ध एवं आज्ञा | शक्ति | स्वर |
| सूर्य | दशारद्वय | मणिपूर तथा हृदय | कामराज | क आदि वर्ण |
| अग्नि | त्रिकोण तथा अष्टार | मूलाधार एवं स्वाधिष्ठान | वाग्भव | य वर्ग के वर्ण |
| बैन्दव स्थान | तीन वृत्त तथा भू पुर | सहस्रार | अन्तिम तूर्य | नाद |

जिस प्रकार श्रीयन्त्र में चन्द्र, सूर्य, अग्नि खण्ड तथा बैन्दव स्थान हैं, उसी प्रकार मन्त्र में भी ये सब हैं। श्रीयन्त्र और देह

का ऐक्य पहले ही बताया जा चुका है। बैन्दव स्थान सहस्रार है और महानाद का स्थान भी वही है। ऐसा भी कहा जा सकता है कि मन्त्र के अन्तिम कूट का स्थान सहस्रार है।

मन्त्र के तीन भाग इस प्रकार भी किये जा सकते हैं—

(१) स्वर, (२) वर्ण एवं (३) नाद, और मन्त्र का अन्तिम या तूर्य कूट नादान्त अथवा कारण बिन्दु होगा।

यहाँ मन्त्र तथा कला (अर्थात् अक्षर-समूह) का ऐक्य भी बताया है—

मन्त्र का सोम खण्ड—चन्द्रात्मक होने से सब स्वरों का द्योतक है।

मन्त्र का सूर्य खण्ड सूर्यात्मक होने से क से म पर्यन्त वर्णों का द्योतक है।

मन्त्र का अग्नि खण्ड—अनलात्मक होने से य, र, ल, व, श, ष तथा स का द्योतक है। तथा

मन्त्र का बैन्दव खण्ड—क्ष का द्योतक है।

ह विसर्ग के और ऌ ल के अन्तर्गत आ गया है।

इस प्रकार सब मात्रिकाएँ पञ्चदशी मन्त्र के ही रूप हैं।

[ २१ ]

**ककाराभ्यां स्वरगणमवष्टभ्य निखिलं,**
**कलाप्रत्याहारात्सकलमभवद्व्यञ्जनगणः ।**
**त्रिखंडे स्यात्प्रत्याहरणमिदमन्वक्कषयुगं*,**
**क्षकारश्चाकारोऽक्षरतनुतया चाक्षरमिति ॥**

---

पाठान्तर—*मञ्चत्कषयुगं ।

**सरल अर्थ**—'क' कार का 'अ'कार सब स्वरों पर अधिकार किये हुए है। कला के प्रत्याहरण से सब व्यञ्जनगणों का अभाव हो जाता है। तीनों खण्डों का प्रत्याहरण इस क ष के जोड़े अर्थात् 'क्ष' में हो जाता है। 'क्ष'कार और 'अ'कार ही अक्षरों का शरीर है, इसलिये यह अक्षर है।

**कठिन शब्द**—अवष्टम्भ=अधिकार करके।

**व्याख्या**—क कार में जो अकार है, वह सब स्वरों पर अधिकार किये हुए है अर्थात् क कार के साथ का अकार सब स्वरों का प्रतिनिधित्व करता है अर्थात् अकार सब स्वरों का द्योतक है। व्याकरण में भी स्वर-समूह को 'अच' कहते हैं। साधारण भाषा में भी हम स्वरों को अ आदि कह कर सम्बोधित करते हैं अर्थात् अ से सब स्वरों का सम्बोधन होता है। 'अ' वर्ग का अर्थ ही स्वर-समूह होता है।

यहाँ कला का अर्थ स्वर है क्योंकि कला सोलह की संख्या बताता है। स्वर भी सोलह हैं। यदि व्यञ्जन-समूह में से स्वर निकाल लिये जायें तो सब व्यञ्जनों का अभाव हो जाता है अर्थात् स्वरों से रहित व्यञ्जनों का प्रयोग नहीं होता अथवा स्वरों से रहित व्यञ्जनों का उच्चारण सम्भव नहीं है। भगवान् शंकराचार्य ने सौन्दर्य लहरी में कहा है—

**शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुं।**

शारदा तिलक में कहा है—

**बिना स्वरैस्तु नान्येषां जायते व्यक्तिरञ्जसा।**
**शिवशक्तिमयान् प्राहुस्तस्माद्वर्णान् मनीषिणः॥**

मातृकाहृदय में भी कहा है—

**ककारादि क्षकारान्ता वर्णास्ते शिवरूपिणः।**
**समस्तव्यस्तरूपेण षट्त्रिंशत्तत्व विग्रहाः॥**

**अकारादिविसर्गान्ताः स्वराः षोडश शक्तयः ।**
**नित्याषोडशकात्मानः परस्परममी युताः ॥**
**शिव शक्तिमया वर्णाः शब्दार्थ प्रतिपादकाः ।**
**शिवः स्वरपराधीनो न स्वतन्त्रः कदाप्यसौ ॥**
**स्वराः स्वतन्त्रा जायन्ते न शिवस्तु कदाचन ।**

मन्त्र के तीनों खण्डों का क ष युग्म अर्थात् क्ष कार में प्रत्याहरण होता है। क्ष कार का अर्थ, जैसा कि पहले कहा जा चुका है, आकाश होता है और आकाश नाद का द्योतक है। इसलिये यह कहा जा सकता है कि मन्त्र के तीनों खण्डों का नाद में लय हो जाता है। क्ष कार ही वैन्दव गृह है।

ऊपर कहा जा चुका है कि स्वर के बिना व्यञ्जन नहीं रह सकते अर्थात् वर्णों का स्वरों के बिना उच्चारण सम्भव नहीं है। स्वर नाद से उत्पन्न होते हैं, इसलिये नाद ही मुख्य है।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, मन्त्र में तीन खण्ड हैं,—वर्ण, स्वर एवं नाद। वर्ण स्वरों पर निर्भर हैं, स्वर नाद पर और ये तीनों नादान्त अथवा नाद की कारण अवस्था पर निर्भर हैं।

क्ष कार ही अक्षरों का शरीर है अथवा अव्यक्त नाद ही शब्दों का कारण है, इसीलिए इन्हें अक्षर कहते हैं।

यहाँ यह भी कहा जा सकता है कि अक्षर में अ से सब स्वरों का बोध होता है, क्ष कार में क तथा ष होने से यह सब वर्ण-समूह (क, च, ट, त, प, य, ह, ष अर्थात् क वर्ग से ष वर्ग तक) का द्योतक है। इस प्रकार अक्षर शब्द से पूरी वर्णमाला का बोध होता है।

**मन्त्रार्थ**—अकार वर्ण तथा स्वर दोनों का द्योतक है, क्यों

कि वर्ण स्वरों के विना रह नहीं सकते तथा क्ष अर्थात् आकाश से ह अथवा विसर्ग लिया जा सकता है। यथा –

बिन्दु प्राण विसर्ग जीव सहितं बिन्दुत्रिबीजात्मकं,
षट्कूटानि विपर्ययेण निगदेत्तारत्रिबालावलैः।
एभिः संपुटितं प्रजप्य विरहेत्प्रासादमन्त्रं परं,
गुह्याद्गुह्यतमं सयोगजनितं सद्भोग मोक्ष प्रदम् ॥२६

—त्रिपुरामहिम्न

इस प्रकार इस से अ एवं ह का उद्धार होता है और इनसे परा विद्या का बोध होता है जो कि ऊपर लिखे त्रिपुरामहिम्न के स्तोत्र में दी गई है।

—अथवा—

मन्त्र का पहला अक्षर 'क' क् तथा अ के योग से बना है। 'क' सब वर्णों का तथा अ सब स्वरों का द्योतक है अर्थात् अ सब स्वरों पर अधिकार किये हुए है। व्याकरण में भी स्वर-समूह को 'अच' कहते हैं।

कला १६ हैं और स्वर भी १६ हैं, इसलिये कला का अर्थ स्वर भी हो जाता है और कला के निकाल लेने पर सब व्यञ्जन-गणों का अभाव हो जाता है, क्योंकि स्वरों से रहित व्यञ्जनों का उच्चारण नहीं हो सकता। अथवा प्रथम 'क'कार एवं अन्तिम 'ल'कार सब वर्णों का प्रत्याहार करते हैं (संस्कृत में 'ल' अन्तिम वर्ण माना जाता है) अर्थात् इनके बीच में सब वर्ण आ जाते हैं। 'क'कार तथा 'ल'कार के मिलने से कला शब्द बनता है। कला ५० हैं—चन्द्र की १६, सूर्य की २४ तथा अग्नी की १०=कुल ५०। अक्षर भी ५० हैं। वर्ण शरीर है और स्वर उस की कला है, जिस प्रकार शक्तिमान् एवं शक्ति।

अर्थात् वर्ण शिव हैं तथा स्वर शक्ति है। इसलिये मन्त्र का हर अक्षर शिव-शक्त्यात्मक है। कला-प्रधान होने से सब वर्ण कलात्मक हैं।

श्रीविद्या-मन्त्र में चार स्थानों पर अनुस्वार आता है जो कि चन्द्र तथा बिन्दु रूप में लिखा जाता है। अनुस्वार बिन्दु है और चन्द्र नाद है ँ नाद। नाद बिन्दु के ऊपर है। प्राचीन पद्धति में ◠ इस प्रकार लिखा जाता था जो कि ठीक स्थिति बताता है। इस प्रकार मन्त्र तीन भागों में विभाजित हो जाता है—

१—नाद—नाद से नादान्त तक (अर्ध चन्द्र, रोधनी, नाद, नादान्त, शक्ति, व्यापिका, समनी तथा उन्मनी)

२-बिन्दु अनुस्वार

३- कला—मन्त्र के वर्ण तथा स्वर

मन्त्र का चौथा खण्ड सादाख्य है जो नाद, बिन्दु, कलातीत है।

श्रीचक्र के भी तीन भाग हैं—

१—नाद—(आज्ञा चक्र से सहस्रार तक) भू पुर

२- बिन्दु—शिव चक्र—तीन वृत्त तथा १६ तथा ८ दल पद्म

३—कला—शक्ति चक्र—त्रिकोण, अष्टार, दशारद्वय तथा चतुर्दशार

सब अक्षर भी १६-१६ के समूह में तीन खण्डों में विभाजित किये जा सकते हैं, यथा—(१) स्वर १६, (२) क से त तक १६ तथा (३) थ से स तक १६।

'कष' युग्म--ष को स भी माना जा सकता है, और तब क स युग्म का अर्थ 'क से स तक दो बार' हो जाता है। इस प्रकार सब अक्षरों का भी तीन खण्डों में प्रत्याहरण हो जाता है। इससे यहाँ अकथ त्रिकोण का संकेत होता है जो कि ज्येष्ठा, वामा, रौद्री शक्ति बताता है; इच्छा, क्रिया, ज्ञान आदि को भी दर्शाता है। 'ळ' अन्तिम होने से 'क'कार के आधीन माना जाता है। (ह, क्ष, ळ ये तीनों त्रिकोण के अन्दर आते हैं)। इस प्रकार यहाँ गुरु-मण्डल की ओर संकेत है।

हम यह भी कह सकते हैं कि ये सब अक्षर १६ नित्याओं के ही रूप हैं और हर एक के सत, रज, तम तीन रूप होने से यह ४८ अक्षर हो जाते हैं।

अ और क्ष मिलकर अक्ष शब्द बनाते हैं जिसका अर्थ अक्ष-माला होता है। इसके अन्तर्भूत सब वर्ण तथा स्वर आ जाते हैं और यही अक्षर स्वरूपिणी श्रीविद्या (कुण्डलिनी शक्ति) है।

श्रीचक्र भगवती का शरीर है एवं भगवती अक्षर स्वरूपिणी होने से श्रीचक्र तथा अक्षर-समूह एक ही हैं। यह ऐक्य नीचे दर्शाया गया है—

क्ष=बैन्दव गृह (चन्द्रमा का स्थान आकाश है, क्ष आकाश का द्योतक है।)=चार शिव के चक्र अर्थात् भू पुर, वृत त्रय, षोडशदल पद्म तथा अष्टदल पद्म।

१४ स्वर=चतुर्दशार

क ख ग घ<br>
च छ ज झ<br>
ट ठ ड ढ<br>
त थ द ध<br>
प फ ब भ

} =दशार युग्म (बीस वर्ण)

य र ल व
श ष स ह } =अष्टार (आठ वर्ण)

ङ ञ ण न म
अनुस्वार
तथा विसर्ग } =त्रिकोण तथा बिन्दु । ङ, ञ, ण, न तथा म—इन पांचों को अनुस्वार रूप माना है, इसलिये ये बिन्दु के ही रूप हैं। अनुस्वार तथा विसर्ग तीन बिन्दु त्रिकोण के द्योतक हैं।

श्लोक १३ में वर्णित छः तथा चार प्रकार का ऐक्य—

छः प्रकार का ऐक्य—(१) मन्त्र तथा मातृकाओं का ऐक्य
(२) मातृका तथा श्रीचक्र का ऐक्य
(३) मन्त्र और नित्याओं का ऐक्य
(४) मातृका तथा नित्याओं का ऐक्य
(५) मन्त्र तथा चक्र का ऐक्य
(६) नित्याओं तथा चक्र का ऐक्य

चार प्रकार का ऐक्य-(१) मातृका तथा मन्त्र का ऐक्य
(२) मन्त्र तथा चक्र का ऐक्य
(३) चक्र तथा नित्याओं का ऐक्य
(४) नित्याओं तथा तिथियों का ऐक्य

मन्त्र तथा मातृकाओं का, मातृकाओं तथा श्रीचक्र का, मातृका तथा नित्याओं का ऐक्य ऊपर बताया जा चुका है। मन्त्र तथा चक्र का ऐक्य पहले बताया जा चुका है, शेष यहाँ दिया जा रहा है।

| मन्त्र | तिथि | वैदिक नाम | नित्यायें | तत्व | खण्ड | यन्त्र के भाग |
|---|---|---|---|---|---|---|
| क | १ | दर्शा | कामेश्वरी | शिव | | |
| ए | २ | दृष्टा | भगमालिनी | शक्ति | अग्नि | त्रिकोण |
| ई | ३ | दर्शता | नित्यक्लिन्ना | माया | | अष्टार |
| ल | ४ | विश्वरूपा | भेरुण्डा | शुद्ध विद्या | | अन्तर्दशार |
| ह्रीं | ५ | सुदर्शना | वह्निवासिनी | जल | | |
| ह | ६ | आप्यायमाना | महावज्रेश्वरी अथवा विद्येश्वरी | तेज | | |
| स | ७ | आप्यायमाना | शिवदूती-रौद्री | वायु | | |
| क | ८ | आप्याया | त्वरिता | मन | सौर | बहिर्दशार |
| ह | ९ | सूनृता | कुल सुन्दरी | पृथ्वी | | चतुर्दशार |
| ल | १० | इरा | नित्या | आकाश | | |
| ह्रीं | ११ | आपूर्यमाना | नीलपताका | विद्या | | |
| स | १२ | आपूर्यमाना | विजया | महेश्वर | | |
| क | १३ | पूरयन्ती | सर्वमङ्गला | पर तत्व | | |
| ल | १४ | पूर्णा | ज्वाला मालिनी | आत्म | चन्द्र | शिव के |
| ह्रीं | १५ | पौर्णमासी | चित्रा या चिद्रूपा | सदाशिव | | चार चक्र |
| श्रीं | १६(अमावस्या) | चिद्रूपा | महात्रिपुर सुन्दरी | सादाख्य | | |

चन्द्रकला–नित्याकला

**नोट**— १ से ५ तक अग्नि खण्ड है, ६-१० तक सौर खण्ड तथा ११-१५ तक सोम खण्ड है। किन्तु ५ तथा ११ सौर खण्ड के अन्तर्गत माने जाते हैं। इसी प्रकार अन्तर्दशार की १० अग्नि-कलायें सूर्य के अन्तर्गत मानी जाती हैं।

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| तिथियों के पाँच खण्ड— | नन्दा | १ | ६ | ११ |
| | भद्रा | २ | ७ | १२ |
| | जया | ३ | ८ | १३ |
| | रिक्ता | ४ | ९ | १४—त्याज्य हैं। |
| | पूर्णा | ५ | १० | १५ |

[ २२ ]

**विदेहेन्द्रापत्यं श्रुत इह ऋषिर्यस्य* च मनो-**
**रयं चार्थः सम्यक्श्रुतिशिरसि तैत्तिर्यकऋचि।**
**ऋषिं हित्वा चास्या हृदय कमले नैतमृषिभि-**
**त्यृचाभ्युक्तः पूजा विधिरिह भवत्याः समयिनाम्॥**

**सरल अर्थ** देह रहित इन्द्र के पुत्र (या लक्ष्मी के देह रहित पुत्र) कामदेव इसके ऋषि हैं। मतान्तर से यहां इस मंत्र का ऋषि सुना जाता है। ऐसा अर्थ श्रुतियों के सिर तैत्तिरीय ऋचा में अच्छी प्रकार कहा गया है। जैसा कि 'न एतं ऋषि' इत्यादि ऋचा के अनुसार हृदय-कमल में ऋषि का त्याग करके कहा है। इस प्रकार की पूजा-विधि समयाचार वालों की पूजा विधि है या इस प्रकार की पूजा समयाचार वालों को मान्य है।

**व्याख्या—श्रुति**—जनको ह वैदेहः। अहो रात्रे समाजगाम। पुत्रो निर्ऋत्या वैदेहः। अचेता यश्चचेतनः। स तं मणिमविन्दत्।

---

पाठान्तर—*विदेहो नैर्ऋत्याः सुत इह ऋषिर्यः स च।

सोऽनङ्गुलिरावयत्। सोऽग्रीवः प्रत्यमुञ्चत्। सोऽजिह्वो असश्चत। नैतमृषिं विदित्वा नगरं प्रविशेत्। यदि प्रविशेत्। मिथौ चरित्वा प्रविशेत्। तत्संभवस्य व्रतम्।

—कृष्ण यजुर्वेदीयं तैत्तिरीयारण्यकम्
प्रथम प्रपाठक, एकादश अनुवाक्

श्री लक्ष्मीधराचार्य ने अपनी सौन्दर्य लहरी की टीका में ३२वें श्लोक की टीका लिखते समय इस पर व्याख्या लिखी है।

'जनको ह वैदेहः...' - यह ऋचा तै० आरण्यक प्रथम प्रपाठक के द्वितीय अनुवाक् (६ तथा ७) में है तथा तैत्तिरीय शाखा, काठक श्रुति में तै० ब्राह्मण ३-१० तथा ३-१०९ में भी आई है।

इन ऋचाओं पर भाष्य लिखते हुए श्री लक्ष्मीधराचार्य लिखते हैं—

**जनको ह वैदेह। अहोरात्रैः समाजगाम।**

जनक=उत्पादक अर्थात् श्रीविद्या के ऋषिः।

वैदेह=विदेह से बना है जिसका अर्थ कामदेव है।

अहोरात्रै=अहोरात्रात्मक पञ्चदशी विद्या के वर्ण,

अर्थात् श्री विद्या के ऋषि कामदेव हैं।

**पुत्रो निर्ऋत्या वैदेहः।**

निर्ऋत्याः=लक्ष्मी

अर्थात् लक्ष्मी के पुत्र कामदेव।

सायण-भाष्य के अनुसार निऋति=माया एवं विदेह=चिदात्मक ब्रह्म का विमर्श।

**अचेता यश्चचेतनः।** अङ्ग रहित होने से वह मन तथा इन्द्रियों से रहित है अर्थात् अचेतन है, परन्तु सब प्राणियों में व्याप्त है।

**स तं मणिमविन्दत्।** स=कामदेव, तं=प्रसिद्ध, मणि= विद्यात्मक रत्न, अविन्दत्=जाना, देखा। अर्थात् कामदेव ने सब से पहले इस विद्या-रत्न को देखा अर्थात् कामदेव श्रीविद्या के ऋषि हैं।

आचार्यश्री इस श्लोक में वेदों के आधार पर श्रीविद्या के ऋषि एवं उसकी पूजा-विधि का प्रतिपादन कर रहे हैं। जैसा कि ऊपर की ऋचाओं से स्पष्ट है, श्रीविद्या के ऋषि कामदेव हैं और पूजा-विधि के विषय में आचार्य श्री 'नैतमृषिं विदित्वा नगरं प्रविशेत्'—की ओर ध्यानाकर्षण करते हैं। इस ऋचा पर भाष्य लिखते हुए श्री लक्ष्मीधराचार्य लिखते हैं कि ऋषि को जानकर नगर (श्रीचक्रात्मक नगर) में प्रवेश न करे अर्थात् ऋषि इत्यादि के ज्ञानपूर्वक श्रीचक्र की पूजा न की जाय अर्थात् मन्त्र के केवल बाह्य अङ्गों को जानकर श्रीचक्र की पूजा नहीं करनी चाहिये अर्थात् इस प्रकार आचार्य बहिर्याग का निषेध करते हैं। श्री लक्ष्मीधराचार्य लिखते हैं—

**"आन्तर पूजायां तादात्म्यानुसंधानात्मिकायाम् ऋष्यादिज्ञानं नास्त्येव। उपयोगस्तु दूरत एव। अतो वस्तुसिद्धऋष्यादिपर्युदासमुखेन श्री चक्रस्थ बाह्य पूजनं त्रैवर्णिकैः न कर्तव्यमिति नियम्यते तदुक्त सनत्कुमार संहितायाम्—**

**बाह्यपूजा न कर्तव्या कर्तव्या बाह्यजातिभिः।**
**सा क्षुद्रफलदा नृणामैहिकार्थैकसाधनात्॥**
**बाह्य पूजारताः कौलाः क्षपणाश्च कापालिकाः।**
**दिगम्बराश्चेतिहासा वामकास्तन्त्रवादिनः।**
**जीवन्मुक्ताश्चरन्त्येते त्रिषु लोकेषु सर्वदा॥**

प्रत्येक मन्त्र के बहिरङ्ग और अन्तरङ्गों का जानना आवश्यक है। ऋषि, छन्द, विनियोग आदि बहिरङ्ग हैं। मन्त्र

का उच्चारण काल, वर्णों का स्थान आदि अन्तरङ्ग हैं। श्री भास्करराय ने अपने वरिवस्या रहस्य में इनका वर्णन किया है। मन्त्र जाप के लिये वहिरङ्गों की अपेक्षा अन्तरङ्गों का ज्ञान अधिक आवश्यक है। इसीलिये यहाँ आचार्य वहिरङ्गों का त्याज्य बता रहे हैं।

[ २३ ]

**त्रिखण्डस्त्वन्मन्त्रस्तव च सरघायां निविशते,**
**श्रीयो देव्याः शेषो यत इह समस्ताः शशिकलाः।**
**त्रिखण्डे त्रैखण्डच्यं निवसति समन्त्रे च सुभगे,**
**षडब्जारण्यानो त्रितययुतखण्डे निवसति ॥**

**सरल अर्थ**—हे माँ! तीन खण्डों वाला तेरा मन्त्र सरघा में लय होता है, और हे श्री देवी! तेरा जो शेष भाग है, उसी से यह समस्त चन्द्रकलायें प्रकट होती हैं या हे श्री देवी! यहाँ यह सब चन्द्रकलायें समाप्त हो जाती हैं अर्थात् तू अमा स्वरूपिणी हो जाती है। इस त्रिखण्डात्मक मन्त्र सहित, हे भगवती! तू त्रिखण्ड में निवास करती है और छः कमलों के समूह (कमलों के अरण्य) में भी तीन खण्डों सहित तू निवास करती है।

**व्याख्या**—सरघा=मधु का स्थान अर्थात् सहस्रार है। नाद का लय सहस्रार में होता है, इसलिये मन्त्र का लय-स्थान सहस्रार कहा गया है। वर्णों का लय नाद में और नाद का लय उसके कारण में होता है जिसका स्थान सहस्रार है। शशिकला अर्थात् चन्द्रकला चन्द्रमा की १६वीं कला या अमावस्या है। सोलहवीं कला नित्या कला है क्योंकि चन्द्रमा का वास्तविक

स्वरूप यही है जो सूर्य के प्रकाश से घटती-वढ़ती कलाओं के रूप में चमकता है।

पन्द्रह कलायें क्रमशः पंचदशी के पन्द्रह अक्षरों से सम्बन्धित हैं, जैसा कि बताया जा चुका है. और सोलहवीं कला शुद्ध चिति-शक्ति चिन्मात्र निर्विकल्प समाधी में विराजने वाली स्वयं महात्रिपुर सुन्दरी हैं, क्योंकि अन्य कलायें घटती-बढ़ती हैं, परन्तु चन्द्रमा का विम्ब सदा एक समान रहता है। इसलिये प्रत्येक कला को सोलहवीं कला का अंग समझना चाहिये। प्रत्येक कला का पूजन और ध्यान तदनुसार उस कला से सम्बन्धित तिथि में सोलहवीं कला सहित किया जाता है। सहस्रार के मध्यस्थ चन्द्रमण्डल को बैन्दव स्थान कहते हैं। यह शुद्ध चिति शक्ति की आनन्दमयी कला का स्थान है जिसको 'श्री' अथवा महात्रिपुर सुन्दरी कहते हैं।

## भगवती का त्रिखण्डात्मक रूप

| खण्ड मन्त्र का भाग | यन्त्र का भाग | छः कमलों के भाग | कुण्डलिनी का भाग |
|---|---|---|---|
| सोम–शक्ति कूट | शिव के चार चक्र | आज्ञा तथा विशुद्ध | सोम-कुण्डलिनी |
| सूर्य–काम कूट | चतुर्दशार तथा वहिर्दशार | हृदय तथा मणिपूर | सूर्य-कुण्डलिनी |
| अग्नि–वाग्भव कूट | अन्तर्दशार, अष्टार एवं बिन्दु सहित त्रिकोण | स्वाधिष्ठान तथा मूलाधार | अग्नि-कुण्डलिनी |

[अन्तर्दशार की दस अग्नि-कलायें सूर्य के अन्तर्गत मानी जाती हैं ]

षडब्जारण्य=सुषुम्नान्तर्गत छः चक्र ।

शेष अर्थात् सोलहवाँ अक्षर—यही भगवती का स्वरूप है और नित्य कला है जिससे सब का उदय होता है ।

प्रथम वाग्भव कूट (आग्नेय) भगवती का मुख है ।

द्वितीय कामकला कूट (सौर) भगवती का कण्ठ से कटि-पर्यन्त रूप है ।

तृतीय शक्तिकूट (चन्द्रखण्ड) भगवती का कटि के नीचे का भाग है, जो सृजन-शक्ति का रूप है ।

[ २४ ]

**त्रयं चैतत्स्वान्ते परम शिव पर्यङ्क निलये ,**
**परे *सादाख्येऽस्मिन्निवसति चतुर्धैक्यकलनात् ।**
**स्वरास्ते लीनास्ते भगवति कलाश्रे च सकलाः ,**
**ककाराद्या वृत्ते तदनु चतुरश्रे च यमुखाः ॥**

**सरल अर्थ**—हे परे ! यह सब कुछ जो तीन प्रकार वाला है, वह सब तेरे अपने अन्तर में परम शिव रूपी पर्यङ्क पर सोई हुई सादाख्य कला के रूप में चार प्रकार के एक्य रूप से निवास करता है । स्वर जो हैं वे हे भगवती ! षोडश दल पद्म में सब लीन हो जाते हैं, 'क' कार आदि सब (सकल) व्यञ्जन वृत्तों में और 'य' आदि सब चतुष्कोण में लीन हो जाते हैं ।

---

पाठान्तर—*सादाख्यास्मिन् ।

**व्याख्या**—भगवती त्रिपुरा कहलाती हैं। उनका मन्त्र, यन्त्र आदि सब तीन खण्डों वाला है। त्रिपुरा महिम्न के टीकाकार त्रिपुरा शब्द का विशेष अर्थ बताते हुए लिखते हैं—

"त्रि=तीन, पुरा=पहले अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश्वर—इन त्रिमूर्तियों से पहले जो विद्यमान रहती है। तृसृभ्यो मूर्तिभ्यः पुरातनत्वात् त्रिपुरा इति।" तथा च—

**त्रिमूर्ति सर्गाच्च पुराभवत्वात्,**
**त्रयीमयत्वाच्च तथैव देव्याः।**
**लये त्रिलोक्या अपि पूरकत्वात्,**
**प्रायोऽम्बिका या त्रिपुरेति नाम॥**

इसी विषय पर श्री गौड़पादाचार्य का शक्ति सूत्र—'तत्वत्रयेण भिदा' है अर्थात् एकमात्र ब्रह्म के तीन तत्वों के कारण तीन भेद हो गये हैं। इसके भाष्य में लिखा है कि तत्व शब्द के गुण, मूर्ति, बीज, जगत्, पीठ और खण्ड आदि बहुत से अर्थ हैं,—अतः जो गुण आदियों से पूर्व विद्यमान रहती है।

त्रिपुरार्णव नामक ग्रन्थ में त्रिपुरा का अर्थ सुषुम्ना, पिङ्गला और इड़ा नाड़ियाँ लिखा है तथा पुर का अर्थ मन, बुद्धि और चित्त लिखा है। इन में निवास करने से त्रिपुरा हुई। तथाहि—

**नाड़ी त्रयं तु त्रिपुरा सुषुम्ना पिङ्गलात्विड़ा,**
**मनो बुद्धिस्तथाचित्त पुरत्र्यमुदाहृतम्।**
**तत्र तत्र वसत्येषा तस्मात्तु त्रिपुरामता इति।**

अर्थात् इस महा शक्ति के मण्डल, भूपुर, मन्त्र, रूप, कुण्डलिनी शक्ति (अग्नि, सूर्य, चन्द्र रूप से) ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर की सृष्टि के लिए **सब बातें तीन-तीन हैं, अतः यह त्रिपुरा कहाती है।** मण्डल त्रिकोण, भूपुर भी तीन रेखाओं

वाला, मन्त्र भी त्र्यक्षर (तीन अक्षरों वाला), रूप भी—ब्राह्मी, रौद्री और वैष्णवी; इच्छा शक्ति, ज्ञान शक्ति और क्रिया शक्ति; वामा, ज्येष्ठा और रौद्री; पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी —ये सभी तीन-तीन हैं। सिद्धेश्वरी मत में त्रिपुरा का अर्थ निम्न प्रकार लिखा है :—

**ब्रह्मविष्णुमहेशाद्यैस्त्रिदेवैर्रचितापुरा ।**
**त्रिपुरेति तदा नाम कथितं देवतैः पुरा ॥**

सुन्दरी-स्तव दूसरे प्रकार से कहता है :—

**ब्राह्मी रौद्री वैष्णवीति शक्तयस्तिस्त्र एवहि ।**
**पुरं शरीरं यस्या सा त्रिपुरेति प्रकीर्तिता ॥**

अर्थात् ब्राह्मी (ब्रह्मा की शक्ति), रौद्री (रुद्र की शक्ति), वैष्णवी (विष्णु की शक्ति)—ये तीनों शक्तियाँ जिस महा शक्ति त्रिपुरा के शरीर हैं, वह त्रिपुरा है। यहाँ पुर का अर्थ शरीर है।

कामकला-विलास में और भो स्पष्ट किया है—

**माता मानं मेयं बिन्दुत्रयं भिन्नबीजरूपाणि ।**
**धामत्रय पीठ त्रय शक्ति त्रय भेदवावितान्यपिच ॥१३॥**
**तेषुक्रमेण लिङ्गत्रयं तद्वच्च मातृका त्रितयम् ।**
**इत्थं त्रितयपुरीया तुरीयपीठा च भेदनी विद्या ॥१४॥**

अर्थात् मातृ, मान और मेय (ईश्वर, विद्या और महात्रिपुर सुन्दरी) धाम त्रयं=वाग्भव, कामराज और शक्ति कूट। बिन्दु त्रयं=रक्त, शुक्ल और मिश्र बिन्दु। पीठ त्रय=पूर्णागिरी पीठ, कामरूप पीठ और जालन्धर पीठ। शक्ति त्रयं=इच्छा शक्ति, ज्ञान शक्ति और क्रिया शक्ति। लिङ्ग त्रयं=स्वयम्भू लिङ्ग,

बाण लिङ्ग और शैल (इतर) लिङ्ग। मातृका त्रितयं=तीन मातृकायें।

इस प्रकार समस्त वस्तुओं की समष्टि रूप त्रिपुरा नाम की परा शक्ति महा त्रिपुर सुन्दरी है।

त्रितय पुरीया - त्रितयानि अवयवानि पुराणि शरीराणि यस्याः सा अतएव तुरीयस्य पीठा त्रिविधात्मक सर्व प्रपंचाविर्भाव तिरोभाव भूरित्यर्थः।

अर्थात् त्रिविधात्मक (त्रितय मात्र) संसार की सब वस्तुओं की उत्पत्ति और विनाश की भूमि त्रिपुरा (महात्रिपुर सुन्दरी) है।"

– त्रिपुरामहिम्न (हिन्दी टीका), पृष्ठ ४ से ६ तक।

(२) चार प्रकार का एक्य – मन्त्र =देवता
यन्त्र =देवता
षट् कमल =देवता
कुण्डलिनी-शक्ति = देवता

(३) सादाख्य तत्व=मन्त्र का अन्तिम कूट अर्थात् १६वाँ अक्षर या १६वीं कला अर्थात् चन्द्रकला।

इस श्लोक की अन्तिम दो पंक्तियों में आचार्य श्री मातृकाओं (अक्षरों) का शिव चक्रों से एक्य बता रहे हैं। पहले बताया जा चुका है कि मातृकायें भगवती का स्वरूप हैं अथवा भगवती मातृका स्वरूप हैं, जैसा कि कहा है -

**सर्व्वं वपुः शब्दमयं पुरारे।**

—श्री नीलकण्ठ दीक्षित का शिव लीलार्णव

**सा प्रसूते कुण्डलिनी शब्दब्रह्ममयी विभुः।**
**शक्ति ततो ध्वनिस्मरमान्नाद स्मरमन्निरोधिका ॥१०८**
**ततोऽर्द्धेन्दु स्मृतो विन्दुः स्मरमादासीत परा ततः।**
**पश्यन्ती मध्यकावाचि वैखरी शब्द जन्म भूः।**
**इच्छा ज्ञान क्रियात्माऽसौ तेजोरूपा गुणाम्बिका ॥१०९**
**क्रमेणानेन सृजति कुण्डलिनी वर्णमालिकाम्।**
**अकारादि सकारान्तां द्विचत्वारिंशदात्मिकाम् ॥११०**
**पंचाशद्वार गुणितां पञ्चाशद्वर्ण मालिकाम्।**
**सूतेऽतद्वर्णताऽभिन्ना कला रुद्रादिकाम् क्रमात् ॥१११**

— शारदा तिलक. प्रथम पटल

वामकेश्वर तन्त्रान्तर्गत नित्या षोडशिकार्णव में भी श्री भगवती को वर्णमाला स्वरूपिणी (मातृका स्वरूपिणी) माना है। यथा

**अकचादिटतोनद्ध पयशाक्षरवर्गिणीम् ज्येष्ठाङ्ग बाहु पादाग्रमध्य स्वान्त निवासिनीम्।**

अर्थात् अ से अकारादि षोडश स्वर तथा क=क वर्ग, च=च वर्ग, ट=ट वर्ग, त=त वर्ग से उनद्ध आरम्भ कर प=प वर्ग, य=य वर्ग और श=श वर्ग से जिसके सिर से लेकर पैरों तक के अङ्ग और हृदय बना हुआ है, उस भगवती को मैं प्रणाम करता हूं।

मातृकायें भगवती का ही रूप हैं, इसलिये मातृकाओं का शिवचक्र से एक्य बताने से आचार्यश्री का यह भी तात्पर्य है कि शक्ति तथा शिव एक हैं। इस एक्य को बताते हुए आचार्य कहते हैं—

१. षोडशदल में १६ स्वर आ जाते हैं।
२. सकल व्यञ्जन वृतों में आ जाते हैं। तथा
३. य वर्ग के अक्षर चतुष्कोण में आते हैं।

[ २५ ]

हलो बिन्दुर्वर्गाष्टकभिदलं शांभव वपु-
श्चतुश्चक्रं शक्रस्थित*मनुभयं शक्तिशिवयोः।
निशाद्या दर्शाद्याः श्रुतिनिगदिताः पञ्चदशधा+
भवेयुर्नित्यास्तास्तव× जननि मंत्राक्षर गणाः ॥

**सरल अर्थ**—ह ल बिन्दु-स्थान (अर्थात् त्रिवृत्त) है और वर्ग अष्टक अष्ट दल पद्म है। चार चक्र तेरा शाम्भव शरीर है (अर्थात् शिव के चार चक्र भगवती के हो शिवस्वरूप के चार चक्र हैं)।

शिव तथा शक्ति से अलग तेरी श्रेष्ठ स्थिति है अर्थात् तेरा परम स्वरूप शिव तथा शक्ति दोनों से परे है या वह परा शक्ति शिव, शक्ति दोनों से परे है। परब्रह्म का कोई लिङ्ग नहीं है अर्थात् न वह स्त्रीलिङ्ग है और न वह पुल्लिग है।

श्रुति में कहे अनुसार १५ प्रकार की रात्रियां तथा दर्शाद्या तिथियाँ तेरी नित्यायें हो जाती हैं जो तेरे मन्त्र के अक्षर-गण हैं।

**कठिन शब्द**—इभ=गज=दिग्गज=आठ। **शक्र**=ऐश्वर्य-वान्, बड़ा या श्रेष्ठ।

**शक्रस्थितमनुभयं**=शक्र स्थितम् अन् उभयं=श्रेष्ठ स्थिति दोनों से रहित अथवा अलग।

**भवेयुर्नित्यास्तास्तव=भवेयुः नित्याः ताः तवः।**

---

पाठान्तर—*शक्तास्थित +पंचदश ता ×नित्याप्तास्तव।

**व्याख्या**—शक्ति और शिव अभिन्न हैं। भगवान् शङ्कर का शरीर शक्ति का ही शरीर है, क्योंकि शक्ति शक्तिमान् में ही रहती है, इसलिये शक्ति का शरीर शक्तिमान् का ही शरीर होगा या शक्तिमान् का शरीर ही शक्ति का शरीर है। भगवान् शङ्कराचार्य भी सौन्दर्य लहरी के ३४वें श्लोक में कहते हैं—

**'शरीरं त्वं शम्भोः'**

पूर्व श्लोक में बताया जा चुका है कि भगवती मातृका (अक्षर) स्वरूप है और इसलिये ये अक्षर भगवान् शङ्कर का शरीर हो जाते हैं।

ह और ल बिन्दु-स्थान हैं तथा अ क च त प य श एवं क्ष—ये आठ अष्टदल पद्म हैं। यहाँ श्लोक २४ और २५ में आचार्य मातृकाओं का चार शिव चक्रों से एक्य बता रहे हैं। यह एक्य नीचे दिये अनुसार है—

| शिवचक्र | मातृकायें | |
|---|---|---|
| (१) भू पुर | =य - मुख=य र ल व | तथा ह |
| (२) तीन वृत | =क आदि सब व्यञ्जन | एवं क्ष |
| (३) षोडशदल पद्म | =सोलह स्वर | |
| (४) अष्टदल पद्म | =अष्ट वर्ग | |

ह=आकाश का द्योतक होने से वृत्त अर्थात् शून्य का वाचक है।

ल=पृथ्वी का द्योतक होने से भू पुर का वाचक है।
ये दोनों इकट्ठे बैन्दव स्थान बनाते हैं।

अथवा

'ह' आज्ञा चक्र का और 'ल' सहस्रार का अक्षर है एवं ये

दोनों बिन्दु स्थान बनाते हैं। सब अक्षर रूपी कलाओं का इस शम्भू के स्थान में लय हो जाता है अर्थात् अक्षररूपिणी शक्ति का यहाँ अपने शाम्भव शरीर अर्थात् सहस्रार में लय हो जाता है जो महा नाद का स्थान है।

ह ल से यहां अकथ त्रिकोण भी लिया जा सकता है जोकि गुरु-त्रिकोण है और जहाँ सबका लय हो जाता है।

श्रुति में १५ रात्रियाँ तथा १५ तिथियाँ बताई हैं, ये सब तेरी नित्या अथवा कला रूप हैं और ये १५ नित्या ही तेरे मन्त्र के १५ अक्षर हैं। नित्या सोलह हैं। पन्द्रह नित्या अलग हैं, और सोलहवीं स्वयं भगवती है, इसलिये यहाँ १५ नित्या कही हैं।

**संज्ञान विज्ञानं प्रज्ञानं जानदभिजानत्। सकल्पमानं प्रकल्पमानं मुपकल्पमान मुपक्लृप्तं क्लृप्तम्। श्रेयो वसीय आयत्संभूतं भूतम् इति।**

**चित्रः केतुः प्रभानाभान्संभान्। ज्योतिष्मा ᳪ स्तेजस्वाना तप ᳪ स्तपन्नभितपन् रोचनो रोचमानः शोभनः शोभमानः कल्याणः इति। दर्शा दृष्टा दर्शता विश्वरूपा सुदर्शना। आप्यायमाना प्यायमाना प्याया सूनृतेरा। आपूर्यमाणा पूर्यमाणा पूरयन्ती पूर्णा पौर्णमासी इति। दाता प्रदाताऽऽनन्दो मोदः प्रमोदः (१)।**

**आवेशयन्निवेशयन्तसंवेशनः स ᳪ शान्तः शान्तः। आभवन्प्रभवन्त्संभवन्त्सभूतो भूतः इति।**

**प्रस्तुतं विष्टुत ᳪ स ᳪ स्तुतं कल्याणं विश्वरूपम् शुक्रममृतं तेजस्वि तेजः समिद्धम्। अरुणं भानुमन्मरीचिमदभितपत्तपस्वत् इति।**

सविता प्रसविता दीप्तो दीपयन्दीप्यमानः। ज्वलञ्ज्वलिता तपन्वितपन्त्संतपन्। रोचनो रोचमानः शुम्भूः शुम्भमानो वाम इति।

सुता सुन्वती प्रसूता सूयमानाऽभिषूयमाणा। पीती प्रपा संपा तृप्तिस्तर्पयन्ती (२)। कान्ता काम्या कामजाताऽऽयुष्मती कामदुधा इति।

—कृष्ण यजुर्वेदीय तैत्तिरीय ब्राह्मण तृतीय काण्डे
दशम प्रपाठके प्रथम अनुवाक।

यो ह वा अहोरात्राणां नाम धेयानि वेद। नाहोरात्रेष्वार्तिमार्च्छति। संज्ञानं विज्ञानं दर्शा दृष्टेति। एतावनुवाकौ पूर्वपक्षस्याहोरात्राणां नाम धेयानि। प्रस्तुतं विष्टुत ँ सुता सुन्वतीति। एतावनुवाकावपरपक्षस्याहोरात्राणां नामधेयानि। नाहोरात्रेष्वार्तिमार्च्छति। य एवं वेद (२) इति।

—कृष्ण यजुर्वेदीय तैत्तिरीय ब्राह्मणे तृतीय काण्डे
दशम प्रपाठके दशम अनुवाक

ऊपर दी गई श्रुतियों में तिथियों आदि के नाम आये हैं तथा उनकी फलश्रुति के बारे में यह श्रुति है—

स यो ह वा एता मधुकृतश्च मधुवृषांश्च वेद कुर्वन्ति हास्यैता अग्नौ मधु। नास्येष्टापूर्तं धयन्ति, अथ यो न वेद न हास्यैता अग्नौ मधुकुर्वन्ति, धयन्त्यस्येष्ठापूर्तम्।

—तै० ब्रा० ३–१०–१

'दर्शाद्याः श्रुतिनिगदिताः पंचदशधा' से आचार्य का संकेत ऊपर दी गई श्रुतियों की ओर है जिनमें दर्शाद्याः तिथियों के नाम दिये हैं और इस प्रकार दर्शाद्या का अर्थ तिथि है।

प्रत्येक नित्या तिथि का रूप है और इसीलिये उनका पूजन उसी तिथि में किया जाता है, यथा—प्रथम नित्या का पूजन प्रतिपदा को, आदि।

| तिथि | श्रुति अनुसार तिथियों के नाम | सम्बन्धित नित्या | मन्त्र का अक्षर | |
|---|---|---|---|---|
| १ | दर्शा | कामेश्वरी | क | अग्नी खण्ड |
| २ | दृष्टा | भगमालिनी | ऐ | |
| ३ | दर्शता | नित्यक्लिन्ना | ई | |
| ४ | विश्वरूपा | भेरुण्डा | ल | |
| ५ | सुदर्शना | वह्निवासिनी | ह्री | |
| ६ | आप्यायमाना | महावज्रेश्वरी या विद्येश्वरी | ह | सौर खण्ड |
| ७ | आप्यायमाना (प्यायमाना) | शिवदूती अथवा रौद्री | स | |
| ८ | आप्याया (प्याया) | त्वरिता | क | |
| ९ | सूनृता | कुलसुन्दरी | ह | |
| १० | इरा | नित्या | ल | |
| ११ | आपूर्यमाणा | नीलपताका | ह्री | चन्द्र खण्ड |
| १२ | पूर्यमाणा | विजया | स | |
| १३ | पूरयन्ती | सर्वमङ्गला | क | |
| १४ | पूर्णा | ज्वाला मालिनी | ल | |
| १५ | पौर्णमासी | चित्रा या चिद्रूपा | ह्रीं | |
| १६ | अमा | महा त्रिपुरसुन्दरी | श्रीं | |

पन्द्रह नित्यायें पन्द्रह तिथियाँ हैं और ये ही मन्त्र के पन्द्रह अक्षर हैं। यहाँ आचार्य ने नित्याओं, तिथियों तथा मन्त्र के अक्षरों का ऐक्य बताया है जो ऊपर दिये अनुसार है।

[ २६ ]

**इमास्ताः षोडश्यास्तव च सरघायां शशिकला–**
**स्वरूपायां लीना निवसति तव श्री शशिकला।**
**अयं प्रत्याहारः श्रुत इह कलाव्यञ्जनगणः,**
**ककारेणाकारः स्वरगणमशेषं कथयति ॥**

**सरल अर्थ**—हे श्री चन्द्रकले ! ये सब तेरी चन्द्रकला रूपी सोलहवीं कला में सरघा (सहस्रार) में लीन होकर निवास करती हैं। ये सब एकत्र संग्रहीत 'क' कार आदि सब व्यञ्जन-गण एवं सब स्वर (कला=स्वर) ही कला कहलाते हैं और इन सबका तेरी १६वीं कला में लय होता है।

**व्याख्या**—सोलह स्वर सोलह कलायें हैं और व्यञ्जन सब स्वरों के आधीन हैं, इसलिये सब व्यञ्जन इन १६ कलाओं में लय हो जाते हैं। पच्चीसवें श्लोक में जो पन्द्रह तिथियें, पन्द्रह नित्यायें तथा मन्त्र के पन्द्रह अक्षर कहे गये हैं, वे सब भगवती की सोलहवीं कला में लीन हो जाते हैं, क्योंकि वही भगवती का वास्तविक स्वरूप है। सब नित्यायें सोलहवीं नित्या में लय होती हैं जो कि स्वयं भगवती महात्रिपुर सुन्दरी है। तिथियाँ सब अमावस्या में लय होती हैं, अमावस्या ही भगवती महा-त्रिपुर सुन्दरी है। मन्त्र के पन्द्रह अक्षर १६वें अक्षर में लय होते हैं। जप करते समय एक-एक अक्षर का दूसरे में लय किया जाता है। इस प्रकार सब का लय अन्तिम अक्षर में सहस्रार में हो जाता है। यह सोलहवां अक्षर ही श्री बीज है जो कि भगवती महात्रिपुर सुन्दरी का स्वरूप है। इस श्लोक में आचार्य यह बता रहे हैं कि अक्षर, तिथि तथा नित्या आदि सब का लय भगवती में होता है अर्थात् सोलहवीं कला ही

भगवती का परम स्वरूप है जिसमें कि सबका लय होता है तथा इस सोलहवीं कला से ही सबका उदय होता है। यहां यह भी कहा जा सकता है कि योगी को सहस्रार में ही भगवती महात्रिपुर सुन्दरी का ध्यान करना चाहिये। भगवती के परा रूप का ध्यान ही श्रेय है। इसमें आचार्य का यह भी संकेत छिपा है कि समयाचार वालों को नीचे के चक्रों में ध्यान नहीं करना चाहिये। इस श्लोक में, जैसा कि पहले कहा जा चुका है, आचार्य यह भी बता रहे हैं कि भगवती मातृका (अक्षर) स्वरूप है, वर्णमाला के सब अक्षर उस के ही अङ्ग हैं और वह स्वयं बिन्दु स्वरूपिणी है जो कि ह ल का स्वरूप है। ह विसर्ग होने से बिन्दु स्वरूप है तथा ल भूमि बीज है और गोल होने से भूमि भी बिन्दु स्वरूप है। इन सब अक्षरों का लय सहस्रार-स्थित महा बिन्दु में होता है जो कि नाद का कारण है। अथवा हम यह भी कह सकते हैं कि नाद का उदय-स्थान सहस्रार है।

**सरघा** वैदिक शब्द है यथा—**इय वाव सरघा।**

—तै०ब्रा० ३-१०-१०

[ २७ ]

**क्षकारः पञ्चाशत्कल इति हलो* बैन्दव गृहं,**
**ककारा+दूर्ध्वं स्याज्जननि तव नामाक्षरमिति।**
**भवेत्पूजाकाले मणिखचितभूषाभिरभितः,**
**प्रभाभिर्व्यालीढं भवति मणिपूरं सरसिजम्॥**

**सरल अर्थ**—क्ष कार पचासवीं कला है, इसलिये यह ह ल

---

पाठान्तर—*हरो। + क्षकारा।

(अथवा शंकर) रूपी वैन्दव गृह है। हे जननि! क कार अर्थात् सब व्यञ्जनों से ऊपर (या क्ष कार से ऊपर) तेरे नाम का अक्षर है (श्री बीज) या क कार से ऊपर यह तेरे नाम का अक्षर अर्थात् 'क्ष'कार तेरा स्वरूप है। पूजा के समय मणिपूर कमल में मणियों से जड़ा हुआ प्रभा से युक्त तेरा स्वरूप होता है।

लिह्=चाटना। प्रभाभिर्व्यालीढं=प्रभा से युक्त।

**व्याख्या**—ॐ क्षङ्कार परापरतत्व ज्ञापकं परं ज्योति रूप शिखा मणौ प्रतितिष्ठ। —अक्षमालिकोपनिषत्

अक्षमालिका उपनिषद् में क्ष कार को परापर तत्व का बताने वाला अर्थात् परापर तत्व एवं परम ज्योति स्वरूप कहा है, इसलिये क्ष कार भगवती का स्वरूप है। जिस प्रकार चन्द्रमा की सब कलायें सोलहवीं कला में लय हो जाती हैं, उसी प्रकार अक्षर स्वरूपिणी महामाया क्ष कार में लय हो जाती है। गुरु-त्रिकोण बैन्दव स्थान है क्योंकि यह सहस्रार में स्थित है। ह, ल तथा क्ष इस त्रिकोण के अन्दर आते हैं, इसलिये यह ह ल रूपी बैन्दवगृह है।

पूर्व कहे अनुसार समयाचार के योगियों के लिये नीचे के दो चक्र (मूलाधार एवं स्वाधिष्ठान) त्याज्य हैं तथा समयाचार के अनुसार भगवती का ध्यान मणिपूर से आरम्भ होता है (देखिए श्लोक १४)। योगी जब मणिपूर में भगवती का ध्यान करता है तो श्री भगवती यहां परम प्रकाशमय रूप में प्रकट होती हैं। अथवा यह कहा जा सकता है कि योगी को मणिपूर में भगवती के परम प्रकाशमय स्वरूप का ध्यान करना चाहिए। मन्त्र के अक्षर ही मणि हैं और मन्त्र ही भगवती का शरीर है, इसलिए वह मणियों से खचित कहा गया है।

अथवा जल ही मणि होने से यहाँ भगवती मणिमय रूप में प्रकट होती हैं।

[ २८ ]

**वदन्त्येके वृद्धा मणिरिति जलं तेन* निविडं,**
**परे तु त्वद्रूपं मणिधनुरितीदं समयिनः।**
**अनाहत्या नादः× प्रभवति सुषुम्णाध्वजनित-**
**स्तदा वायोस्तत्र प्रभव इदमाहुः समयिनः॥**

**सरल अर्थ**—एक मत के वृद्ध लोगों का कहना है कि मणिपूर में जल को ही मणि कहा गया है जिस से कि वह परिपूरित है, परन्तु दूसरे समयाचार वाले तेरे स्वरूप को इन्द्रधनुष रूपी मानते हैं। अनाहत चक्र में जो नाद है, वह सुषुम्ना जनित वायु से उत्पन्न होता है—ऐसा समयाचार वाले मानते हैं।

**व्याख्या**—स्वाधिष्ठान स्थित जल जब अनाहत स्थित सूर्य की गर्मी से वाष्प रूप में परिणित होकर ऊपर उठता है, तब वह मेघों के रूप में मणिपूर में स्थित होता है। मेघ विद्युत् का स्थान हैं और विद्युत् अग्नि का ही स्वरूप है, जैसा कि श्रुति कहती है—

**अन्तरिक्षगतो वह्निर्वैद्युतः** — योगशिखोपनिषद् ५-३२

इसलिए मणिपूर को अग्नि और जल दोनों का स्थान कहा जाता है। जब इन मेघों पर सूर्य की किरणें पड़ती हैं, तब

---

पाठान्तर—*लीन । ×सादः ।

इन्द्रधनुष का उदय होता है। इस प्रकार मणिपूर में भगवती इन्द्रधनुष के स्वरूप में प्रकट होती हैं।

वायु ही नाद की उत्पत्ति का कारण है तथा अनाहत चक्र नाद का स्थान माना गया है, क्यों कि वैखरी वाणी अनाहत के ऊपर ही प्रकट होती है।

[ २६ ]

**तदेतत्ते संवित्कमलमिति संज्ञान्तरमुमे,**
**भवेत्संवित्पूजा भवति कमलेऽस्मिन्समयिनाम्।**
**विशुद्धयाख्ये चक्रे वियदुदितमाहुः समयिनः,**
**सदापूर्वो देवः शिव इति हिमानी समतनुः॥**

**सरल अर्थ**- हे उमा! यह जो तेरा संवित् (हृदय) कमल है, यह इसका दूसरा नाम है। समयाचार वालों की इस कमल में संवित् पूजा होती है। विशुद्ध चक्र में आकाश का उदय होता है, ऐसा समयाचार वाले कहते हैं। यहाँ सबसे पहिले वाले देव शिव अथवा जिनके नाम के आगे 'सदा' लगा रहता है, वे देव शिव अर्थात् सदाशिव रहते हैं जिनका शरीर हिम सदृश्य श्वेत रंग का है।

**व्याख्या**—श्लोक २८ में आचार्य श्री ने मणिपूर चक्र का वर्णन करने के बाद अन्तिम दो पंक्तियों में अनाहत चक्र का वर्णन किया है। इस अनाहत चक्र का ही आगे वर्णन करते हुए आचार्य श्री कहते हैं कि इस चक्र का दूसरा नाम संवित् कमल भी है। इसे संवित् कमल क्यों कहा जाता है? इस विषय

में आचार्य कहते हैं कि समयाचार वालों की संवित् पूजा होती है, इसलिये यह संवित् कमल कहलाता है। मानसिक पूजा हृदय-कमल में ही होती है और ध्यान भी हृदय-कमल में ही किया जाता है।

संवित् का अर्थ चेतन होता है। हृदय-कमल चेतनता का प्रथम सोपान है और यहाँ भगवती की उपासना चिति रूप में की जाती है। अथवा कुण्डलिनी शक्ति के हृदय-कमल में आ जाने पर साधक भाव-लोक में विचरने लगता है और भगवती महारानी जी के दर्शन करता है।

संवित् का अर्थ ज्ञान भी होता है। पूर्व श्लोक में आचार्य-श्री ने बताया है कि मेघों का निर्माण किस प्रकार होता है और मेघों में अग्नि विद्युत् के रूप में होती है। मेघों से नाद की उत्पत्ति होती है क्योंकि विद्युत् की चमक के साथ ही मेघों का गर्जन होता है अर्थात् वही विद्युत् नाद या शब्द में बदल जाती है। इस (नाद) का प्रथम ज्ञान अनाहत चक्र में होता है अर्थात् यहाँ भाव की अभिव्यक्ति होती है जो विशुद्ध चक्र में नाद अथवा वाणी (बैखरी) के रूप में प्रकट होगा।

अनाहत चक्र के वर्णन के बाद अब आचार्यश्री विशुद्ध चक्र का वर्णन करते हैं। समयाचार वालों के अनुसार विशुद्ध चक्र आकाश तत्व का स्थान है अथवा यहाँ आकाश तत्व का उदय होता है। इस चक्र के देवता भगवान् सदाशिव हैं जो सब देवों के पूर्व के हैं, जैसा कि कहा है -

**विशुद्धे राजते तत्र सदाशिवः शक्त्यासहः।**
**आज्ञायन्तु शिवज्योति सहस्रारे ह्यनामयः ॥१०॥**

—शाक्तानन्द तरंगिणी

[ ३० ]

त्वदीयैरुद्द्योतैर्भवति च विशुद्धयाख्यसदनं,
भवेत्पूजा देव्या हिमकर कलाभिः समयिनाम्।
सहस्रारे चक्रे निवसति कलापञ्चदशकं,
तदेतन्नित्याख्यं भ्रमति सितपक्षे समयिनाम्॥

**सरल अर्थ**—तेरे से उदय होने वाली ज्योति के कारण यह चक्र विशुद्ध नाम से पुकारा जाता है अर्थात् विशुद्ध चक्र कहलाता है। समयाचार वालों की इस चक्र में, हे भगवती! चन्द्रकलाओं के रूप में तेरी पूजा होती है। सहस्रार चक्र में जो चन्द्रमा की पन्द्रह कलायें रहती हैं, वे समय मार्ग के अनुयायियों के अनुसार पन्द्रह नित्या स्वरूप हैं और ये तिथियाँ शुक्ल पक्ष में भ्रमण करती हैं अथवा पन्द्रह नित्यायें शुक्ल पक्ष की पन्द्रह तिथियाँ हैं।

**व्याख्या**—श्लोक २६ की अन्तिम दो पंक्तियों में आचार्य-श्री ने विशुद्ध चक्र का वर्णन प्रारम्भ किया है और अब विशुद्ध चक्र के ही विषय में आचार्य आगे कह रहे हैं कि यह चक्र विशुद्ध चक्र इसलिये कहलाता है क्यों कि तेरी प्रभा से आलोकित है अथवा, हे माँ! तेरे से प्रकट होने वाली ज्योति से प्रकाशित होने के कारण यह विशुद्ध चक्र है। विशुद्ध चक्र के सोलह दल चन्द्रमा की सोलह कलाओं का प्रतिनिधित्व करते हैं, इसलिए इस चक्र में राजराजेश्वरी भगवती का पूजन चन्द्र कलाओं के रूप में किया जाता है।

विशुद्ध चक्र का वर्णन करते हुए आचार्यश्री शंकर भगवत् पाद अपनी सौन्दर्य लहरी में लिखते हैं—

**विशुद्धौ ते शुद्धस्फटिक विशदं व्योम जनकं,**
**शिवं सेवे देवीमपि शिवसमानव्यवसिताम्।**
**ययोः कान्त्या यान्त्याः शशिकिरणसारूप्य सरणेः,**
**विधूतान्तर्ध्वान्ता विलसति चकोरीव जगती ॥३७॥**

जैसाकि श्लोक २९ में कहा गया है, नाद की प्रथम अभिव्यक्ति, जिसका हम अनुभव कर सकते हैं, अनाहत चक्र में भावों के रूप में होती है और इन भावों को हम वैखरी वाणी के द्वारा प्रकट करते हैं अर्थात् विशुद्ध चक्र में भाव वाणी का रूप ले लेते हैं।

भगवती महामाया कुण्डलिनी शक्ति मूलाधार से ऊपर उठती हुई विभिन्न रूपों में प्रकट होती है। विशुद्ध चक्र में यह वैखरी वाणी के रूप में प्रकट होती है। मन्त्र ही देवता का शरीर है अर्थात् विशुद्ध चक्र में भगवती मन्त्र रूप में प्रगट होती है। मन्त्र के सोलह अक्षर ही विशुद्ध चक्र के १६ अरे हैं और मन्त्र का प्रत्येक अक्षर चन्द्रमा की किरणों के सदृश्य है क्योंकि भगवती स्वयं चन्द्रकला हैं। इस विषय में मेरे परम पूज्य गुरुदेव ने लिखा है -

"विशुद्ध चक्र के १६ पत्रों पर पूर्व से अग्नि, दक्षिण, नैऋत, पश्चिम, वायव्य, उत्तर और ईशान क्रमानुसार १६ अक्षरों की भावना की जाती है। ये चन्द्रमा की कलाओं के सदृश्य चमकते हैं जो सहस्रार की पूर्ण कला के बिम्ब से आज्ञा चक्र पर होती हुई नीचे के विशुद्ध चक्र पर प्रतिबिम्बित होती हैं। इस प्रकार चिति शक्ति का सम्बन्ध १६ नित्या-कलाओं से, उनका सम्बन्ध मन्त्र से, मन्त्र का सुषुम्ना से, सुषुम्ना का मातृका से, मातृका का इडा-पिंगला तथा तत्सम्बन्धी सूर्याग्नि-

चन्द्र से और सत्र का सम्बन्ध श्रीचक्र से है जो देह (पिण्ड) और विराट् देह (ब्रह्माण्ड) दोनों का प्रतीक है। इन सब का पारस्परिक सम्बन्ध समझना चाहिये।''

—सौ०ल० टीका (द्वितीयावृत्ति) पृष्ठ १६३-१६४

अन्तिम दो पंक्तियों में आचार्य शुक्ल पक्ष की तिथियों तथा नित्याओं की समानता बता रहे हैं। नित्याओं का सम्बन्ध मन्त्र के अक्षरों से है (अर्थात् मन्त्र के अक्षर ही नित्याओं का रूप हैं)। इस विषय में श्लोक २५ की व्याख्या में लिखा जा चुका है।

[ ३१ ]

**अतः शुक्ले पक्षे *प्रतिदिनमिह त्वां भगवतीं,**
**निशायां सेवन्ते निशि चरमभागे समयिनः।**
**शुचिः स्वाधिष्ठाने रविरुपरि संवित्सरसिजे,**
**शशी चाज्ञाचक्रे हरिहरविधि ग्रन्थय इमे॥**

**सरल अर्थ**—इसलिए शुक्ल पक्ष में प्रतिदिन रात्रि के चरम भाग में समयाचार वाले, हे भगवती! तेरी सेवा अर्थात् पूजा करते हैं। स्वाधिष्ठान में अग्नि, ऊपर अनाहत कमल में सूर्य और आज्ञा चक्र में चन्द्रमा,—ये हरि, हर एवं विधि ग्रन्थियाँ हैं।

**व्याख्या**—श्लोक ३० में कहे अनुसार शुक्ल पक्ष की १५ तिथियाँ नित्या स्वरूप हैं, इसलिये भगवती का पूजन शुक्ल पक्ष में ही होता है अर्थात् भगवती कुण्डलिनी शक्ति का जागरण

पाठान्तर— *प्रतिदिनमहस्त्वां।

शुक्ल पक्ष में ही किया जाता है क्योंकि शुक्ल पक्ष में ही अमृत की अधिकता होती है। शुक्ल पक्ष में ही चन्द्रमा से अमृत प्राप्त होता है। सूर्य की किरणों से ताप का हरण करके चन्द्रमा शुक्ल पक्ष में ज्योत्स्ना प्रदान करता है। चन्द्र रात्रि में ही रहता है, इसलिये चन्द्रकला की उपासना रात्रि में ही होती है अर्थात् योगी रात्रि के अन्तिम प्रहर में योग (कुण्डलिनी) का साधन करे, जैसा कि तै० ब्रा० ३-१०-१० में कहा है—

**ता मधुकृतः।**

इसकी व्याख्या करते हुए श्री लक्ष्मीधराचार्य लिखते हैं—

**ताः रात्रयः मधु कुर्वन्तीति मधुकृतः। रात्रिष्वेव मधुनः संग्रह इति लोक प्रसिद्धि। रात्रावेव चन्द्रकलारूपायाः श्री विद्यायाः अनुष्ठानम्, न च दिवसे इति उपदेशः।**

अन्तिम दो पंक्तियों में आचार्यश्री तीन ग्रन्थियों के स्थान बता रहे हैं—स्वाधिष्ठान में—विष्णु ग्रन्थि,
अनाहत चक्र में—रुद्र ग्रन्थि एवं
आज्ञा चक्र में—ब्रह्म ग्रन्थि।

आचार्यश्री द्वारा बताया गया यह क्रम कुछ भिन्न है। अन्यत्र इस प्रकार का वर्णन नहीं मिलता। ललिता सहस्रनाम में यह इस प्रकार दिया है—

**मूलाधारैकनिलया ब्रह्मग्रन्थिविभेदिनी।**
**मणिपूरान्तरुदिता विष्णुग्रन्थिविभेदिनी।**
**आज्ञाचक्रान्तरालस्था रुद्रग्रन्थिविभेदिनी॥**

आचार्य श्री ने प्रथम विष्णु ग्रन्थि बताई है एवं तदनन्तर रुद्र एवं ब्रह्म ग्रन्थियाँ कही हैं। यह क्रम वेदों के आधार पर

प्रतीत होता है। स्वाधिष्ठान के अधिष्ठाता देवता भी विष्णु हैं। रुद्र सूर्य रूप माने गये हैं क्योंकि सूर्य विष-सृजन करने के कारण संहारक हो जाता है। आज्ञा चन्द्र का स्थान है और चन्द्रमा से ही चन्द्र-किरणों अथवा नित्याओं की उत्पत्ति होती है। आज्ञा चक्र ही मन तथा आत्म तत्व का स्थान है जिनसे और सब तत्वों की उत्पत्ति होती है। सम्भवतः इसीलिये इसे ब्रह्म ग्रन्थि कहा है।

योग के कुछ ग्रन्थों में नीचे लिखे प्रकार का क्रम भी दिया है

(१) रुद्र ग्रन्थि,
(२) विष्णु ग्रन्थि, तथा
(३) ब्रह्म ग्रन्थि।

आचार्य के अनुसार मन्त्र के प्रथम तथा द्वितीय कूट अर्थात् अग्नि खण्ड एवं सौर खण्ड के बीच की हृ लेखा विष्णु ग्रन्थि है ("यज्ञो वै विष्णु" के अनुसार विष्णु अग्नि खण्ड के देवता हुए), सौर एवं चन्द्र खण्ड अर्थात् द्वितीय एवं तृतीय कूट के मध्य की हृ लेखा रुद्र ग्रन्थि है तथा तृतीय कूट के अन्त की हृ लेखा ब्रह्म ग्रन्थि है। श्लोक २३ में दिये अनुसार मन्त्र का तृतीय (चन्द्र) खण्ड भगवती की कटि के नीचे का भाग है और सृजन शक्ति का रूप होने से यही तृतीय हृ लेखा ब्रह्म ग्रन्थि है।

ग्रन्थित्रय के विषय में मेरे परमपूज्य गुरुदेव श्री १००८ श्री स्वामी विष्णुतीर्थ जी महाराज लिखते हैं—

'ग्रन्थि गाँठ को कहते हैं। दो भिन्न वस्तुओं को जोड़ने या बाँधने के लिये गाँठ से काम लिया जाता है और प्रायः एक ही वस्तु में विकार आने पर उलझनों की भी ग्रन्थियाँ पड़ जाया

करती हैं, जैसे केशों अथवा धागों में। अध्यात्म ग्रन्थि के स्वरूप का वर्णन श्री गोस्वामी तुलसीदास जी ने इन शब्दों में किया है—

जड़ चेतनहिं ग्रन्थि परि गई,
जदपि मृषा छूटत कठिनई।

'अर्थात् जड़ प्रकृति और चेतन आत्मा की गांठ पड़ गई है। यद्यपि वह झूठी है तो भी बड़ी कठिनाई से खोली जा सकती है।

'आत्मा शुद्ध चेतन स्वरूप निर्विकारी है और देह, इन्द्रियाँ तथा मन-बुद्धि का संघात प्रकृति के विकार हैं। दोनों में गठ-बन्धन होना असम्भव है, परन्तु दोनों का भिन्न-भिन्न स्तरों पर ऐसा तादात्म्य दीखता है कि उनके पृथक् होने का ज्ञान अति दुर्लभ हो रहा है। जैसे, देह के अभिमान से आत्मा अपने को देह के धर्म वाला समझता है। दार्शनिक परिभाषा में इस मिथ्या प्रतीति को अध्यास, विपर्यय ज्ञान अथवा ख्याति कहते हैं।

'श्रीमच्छङ्कर भगवत्पाद ने अध्यास शब्द को इस प्रकार समझाया है—आत्मा अहं अथवा अस्मत् पद है और प्रकृति युष्मत् पद है। पहिला विषयी और दूसरा विषय है। दोनों प्रकाश और तमवत् विरुद्ध स्वभाव वाले हैं, परन्तु दोनों एक-दूसरे के भाव को प्राप्त हो जाते हैं अर्थात् चिदात्म विषयी आत्मा में युष्मत् प्रत्यय की प्रतीति, गोचर विषय और उसके धर्मों का भाव और इसके विपरीत विषय और विषय के धर्मों में विषयी और उसके धर्मों का आभास दीखने लगता है। इस इतरेतर अध्यारोपण के मिथ्या ज्ञान को अध्यास कहते हैं। यह स्मृति रूप होता है और पूर्वदृष्ट अर्थात् पहिले देखे हुए

किसी पदार्थ के अन्यत्र अवभास द्वारा उत्पन्न हुआ करता है। पूर्व मीमांसा वाले इसे अख्याति, वैशेषिक और नैयायिक इसे अन्यथा ख्याति, शून्यवादी असत् ख्याति, बौद्ध लोग आत्म-ख्याति, सांख्यवादी सदसत् ख्याति और वेदान्तवादी इसे अनिवर्चनीय ख्याति कहते हैं। परन्तु इस सिद्धान्त में सब एक मत हैं कि यह एक वस्तु का अन्यत्र मिथ्या अवभास मात्र है।

'उक्त मिथ्या अवभास की निवृत्ति और आत्म तत्व के शुद्ध चेतन ब्रह्म स्वरूप के ज्ञान को 'ज्ञान' कहते हैं। आत्मा में देहाध्यास अथवा देह में आत्माध्यास को निवृत्ति करना ही जड़-चेतन की ग्रन्थि का छुड़ाना है जिसका सुन्दर निरूपण श्री गोस्वामी जी ने ज्ञान-दीपक में किया है। अध्यात्माध्यास प्रकृति के तीन गुणों के योग से तीन स्तरों पर प्रतीत होता है। सत्व गुण के योग से उत्पन्न अध्यास को विष्णुग्रन्थि, रजोगुण के योग से उत्पन्न अध्यास को ब्रह्म ग्रन्थि और तमोगुण के योग से उत्पन्न अध्यास को रुद्रग्रन्थि कहते हैं। इसलिये स्थूल देहाध्यास को रुद्रग्रन्थि, इन्द्रियजनित अध्यास को ब्रह्म-ग्रन्थि और अन्तःकरण के योग से उत्पन्न अध्यास को विष्णुग्रन्थि कहते हैं।

'रुद्रग्रन्थि का स्थान मूलाधार में; विष्णुग्रन्थि का हृदय में और ब्रह्मग्रन्थि का स्थान आज्ञाचक्र में बताया जाता है। परन्तु ललितासहस्रनाम में ग्रन्थित्रय का वर्णन इस प्रकार है—

मूलाधारैकनिलया ब्रह्मग्रन्थि विभेदनी।
मणिपूरान्तरुदिता विष्णुग्रन्थि विभेदनी ॥८६॥
आज्ञाचक्रान्तरालस्था रुद्रग्रन्थि विभेदनी।
सहस्राम्बुजारूढा सुधाधाराभिवर्षिणी ॥६०॥

'भूत जय होने पर रुद्रग्रन्थि का, इन्द्रिय जय होने पर ब्रह्म-ग्रन्थि का और मनोजय होने पर विष्णुग्रन्थि का वेध जानना चाहिये। भूत जय होने पर मधुमती और इन्द्रिय एवं मनोजय होने पर मधुप्रतीका भूमिका का उदय होता है। इनसे पूर्व कुण्डलिनी जागरणोपरान्त रजतमोमिश्रित सत्वगुण भूमिका का नाम प्रारम्भ-कल्पिका और ऋतम्भरा प्रज्ञा के उदय होने पर शुद्ध सत्वगुण प्रधान भूमिका का नाम मधुमती भूमिका है (देखें योगदर्शन, विभूति पाद, सूत्र ५१ पर व्यास-भाष्य)।'

—सौ०ल० हिन्दी अनुवाद द्वितीयावृत्ति, पृष्ठ २१६-२२२

[ ३२ ]

**कलायाः षोडश्याः प्रतिफलितबिम्बेन सहितं,**
**तदीयैः पीयूषैः पुनरधिकमाप्लावित तनुः।**
**सिते पक्षे सर्वस्तिथय इह कृष्णेऽपि च समा,**
**यदा चामावास्या भवति न हि पूजा समयिनाम्॥**

[ ३३ ]

**इड़ायां पिङ्गल्यां चरत इह तौ सूर्यशशिनौ,**
**तमस्याधारे तौ यदि तु मिलितौ* सा तिथिरमा।**
**तदाज्ञाचक्रस्थं शिशिरकरबिम्बे रविनिभं,**
**दृढव्यालीढं सद्विगलित सुधासार विसरम्॥**

सरल अर्थ—हे भगवती! तेरी षोडशी कला (सहस्रारस्थ) तथा उसके प्रतिफलित बिम्ब (अर्थात् आज्ञाचक्रस्थ चन्द्र) से

पाठान्तर—*तुलिती।

अमृत का स्रवण होता है या टपकता है और फिर अधिक आप्लावित होता है अर्थात् बार-बार अमृत टपकता रहता है जिससे सारा शरीर भर जाता है और यह शुक्ल पक्ष की सब तिथियों में होता है तथा कृष्ण पक्ष में भी समान रूप से अर्थात् इसी प्रकार होता है, किन्तु अमावस्या को नहीं होता, इसलिए अमावस्या में समयाचार वालों का पूजन नहीं होता।

इड़ा और पिङ्गला नाड़ियों में सूर्य एवं चन्द्रमा घूमते रहते हैं और जब इस प्रकार घूमते हुए ये मूलाधार (जो कि तमोरूप है) में आकर मिल जाते हैं तो वह अमावस्या तिथि हो जाती है। आज्ञा चक्र स्थित चन्द्र द्वारा प्रतिबिम्बित सूर्य के प्रकाश की शीतल किरणें वहाँ दृढ़तापूर्वक चाटकर अमृत की धारा की वर्षा करती हैं।

**व्याख्या**—षोडशी कला स्वयं भगवती राजराजेश्वरी महात्रिपुर सुन्दरी हैं जो कि मन्त्र का १६वाँ अक्षर है। इसका स्थान सहस्रार है और इसके ही प्रकाश से सब कलायें प्रकाशित होती हैं। इस विषय पर मेरे परम पूज्य श्री गुरुदेव ने लिखा है—

"१६ अक्षरों का यह मन्त्र षोडशी विद्या के नाम से प्रसिद्ध है। १६ अक्षरों को १६ नित्या समझना चाहिये। वास्तव में अन्तिम एकाक्षरी लक्ष्मी वीज ही नित्या है, क्योंकि वह परा कला है और उसके कारण ही समस्त विद्या श्री विद्या कहलाती है। यह शुद्ध चिति शक्ति स्वरूपा सहस्रारस्थ चन्द्र की १६वीं कला है जो विशुद्ध चक्र के १६ पत्रों पर प्रतिबिम्बित हुआ करती है। प्रथम कला का प्रकाश पूव से आरम्भ होकर १६वीं कला के ईशान पूर्व कोण के पत्र पर समझना चाहिये।

सोलहवीं कला के अधीन ही अन्य कलायें घटती-बढ़ती हैं, वे स्वतन्त्र नहीं हैं। इसलिये इस विद्या का नाम श्री विद्या पड़ा है।

"शुक्ल और कृष्ण पक्ष की १४ तिथियाँ, पूर्णिमा और अमावस्या सहित १६ चन्द्रकलायें कहलाती हैं। ये सब कलायें शुक्ल पक्ष में सूर्य के योग से उदय होती हैं और कृष्णपक्ष में सूर्य में ही अस्त हो जाती हैं। यथा - प्रथम कला शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा को उदय होकर कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा में अस्त हो जाती है। दूसरी कला शुक्ल पक्ष की द्वितीया को उदय होकर कृष्ण पक्ष की द्वितीया में अस्त हो जाती है। इसी प्रकार अन्य कलाओं को भी समझना चाहिये। पूर्णिमा की पूर्ण कला अमावस्या में अस्त होती है। अमावस्या को पूर्णिमा की कला के अस्त हो जाने पर जो चन्द्रकला रहती है, वही १६वीं नित्या कला है, क्योंकि चन्द्रमा का वही वास्तविक बिम्ब प्रत्येक कला में सूर्य के प्रकाश से घटती-बढ़ती कलाओं के रूप में चमका करता है।

"शुद्ध चिति शक्ति की १५ कलायें पंचदशी के १५ अक्षरों से क्रमश: सम्बद्ध हैं और १६वीं कला शुद्ध चिति शक्ति चिन्मात्र निर्विकल्प समाधि में विराजने वाली स्वयं महात्रिपुर सुन्दरी है क्योंकि अन्य सब कलायें घटती-बढ़ती हैं, चन्द्र का बिम्ब सदा एक समान रहता है। इसलिये प्रत्येक कला को १६वीं कला का अङ्ग समझना चाहिये और प्रत्येक कला का पूजन और ध्यान तदनुसार उस कला की सम्बन्धित तिथि में १६वीं कला सहित किया जाता है।

"कुण्डलिनी सहस्रार में चढ़ते समय मानस चक्रस्थ चन्द्रमण्डल में छिद्र कर देती है। उससे अमृत टपककर आज्ञा चक्र को अमृतमय कर देता है जिससे वहां पर चन्द्रमा की सब कलायें नित्य चमकने लगती हैं और उनका नाम नित्या कहलाने लगता है। ये कलायें फिर विशुद्ध चक्र पर उतर कर उसकी १६ पंखुड़ियों पर प्रकाशमान् हो जाती हैं। सहस्रार के मध्यस्थ चन्द्रमण्डल को वैन्दव स्थान कहते हैं। यह शुद्ध चिति शक्ति की आनन्दमयी कला का स्थान है जिसको श्री अथवा महा-त्रिपुर सुन्दरी कहते हैं।"

—सौ० ल० हिन्दी अनुवाद (द्वितीयावृत्ति) पृष्ठ १८६-१८८

सूर्य का प्रकाश ही चन्द्र द्वारा परावर्तित होकर उसको आलोकित करता है अर्थात् चन्द्रमा की ज्योत्स्ना सूर्य का ही परावर्तित प्रकाश है। अमावस्या में सूर्य एवं चन्द्र एक ही राशि में आ जाने से सूर्य का चन्द्र द्वारा परावर्तित प्रकाश पृथ्वी पर नहीं आता। चन्द्रमा सूर्य के प्रकाश की उष्णता को हर लेता है। उष्णता अधिक मात्रा में विष का काम करती है और इस प्रकार विष रूपी उष्णता का हरण करके चन्द्रमा अमृत का स्रवण करता है जो कि अमावस्या को नहीं हो पाता। इसीलिए अमावस्या में समयाचार वाले पूजन नहीं करते। सूर्य और चन्द्रमा के मूलाधार में मिलने पर अमावस्या होती है जैसा कि श्लोक ४ की व्याख्या में स्पष्ट किया जा चुका है। इसलिए यहाँ अमावस्या में पूजन के निषेध का अर्थ मूलाधार में पूजन का निषेध करना है। जैसाकि पहिले कहा जा चुका है, समयाचार वालों के लिए मूलाधार त्याज्य है क्योंकि यह अन्धकार से पूर्ण है।

[ ३४ ]

**महाव्योमस्थेन्दोरमृतलहरी प्लाविततनुः ,**
**प्रशुष्य द्वं ❀ नाड़ीप्रकरमनिशं प्लावयति तत् ।**
**यदाज्ञायां विद्युन्नियुताभाक्षरमयी ,**
**स्थिता × विद्युल्लेखा भगवति विधि ग्रन्थिमभिनत् ।।**

**सरल अर्थ**—महा आकाश स्थित चन्द्रमा अपनी अमृत की वर्षा (लहरी) के द्वारा शरीर को आप्लावित करता रहता है, किन्तु यह अमृत नाड़ी-समूह के द्वारा सूखता भी रहता है। यह क्रम इस प्रकार हमेशा चलता रहता है। यदि योगी आज्ञा चक्र में विद्युत्युक्त आभा को स्थिर करके उसे अक्षर से युक्त कर लेता है अर्थात् उसे नष्ट नहीं होने देता (अथवा अक्षर अर्थात् ब्रह्म से युक्त कर लेता है) तो वह भगवती विद्युत्-लेखा रूप हो जाती है और तब विधि (ब्रह्म) ग्रन्थि का वेध होता है।

**व्याख्या**—जैसा कि श्लोक ४ में बताया जा चुका है, चन्द्र नाड़ी के द्वारा शरीर में अमृत का वितरण होता रहता है और भ्रमण करता हुआ सूर्य उस अमृत का हरण करता रहता है। यह क्रम चलता रहता है।

दैनिक जीवन में दिन के समय कार्य करने के कारण मनुष्य की शक्ति का ह्रास होता रहता है और रात्रि में विश्राम के द्वारा उस शक्ति को पुनः प्राप्त किया जाता है। अर्थात् सूर्य (दिवस) विष का और चन्द्रमा (रात्रि) अमृत का कार्य करता

---

पाठान्तर—❀द्वेशन्त। ×सिता।

है। मनुष्य जब अपनी शक्ति का व्यर्थ ह्रास नहीं होने देता या उसके ह्रास को रोक लेता है, उस समय विष का स्रवण बन्द होने से अमृत की अधिकता होती है अथवा जीवनी शक्ति की वृद्धि होती है।

योगी जब इड़ा एवं पिङ्गला नाड़ियों में अपने प्राणों के प्रवाह को रोक लेता है, तब यह क्रम बन्द हो जाता है और प्राण सुषुम्णा मार्ग में प्रवेश करते हैं। उस समय कुण्डलिनी शक्ति विद्युत् आभा के सदृश्य चमकती है और मणिपूर चक्र में विद्युत् लेखा के रूप में प्रकट होती है ( देखिए श्लोक १४ की व्याख्या )। जब यह आज्ञा चक्र में आकर अक्षर ब्रह्म में लीन हो जाती है तो ब्रह्मग्रन्थि का वेध हो जाता है। अथवा जब मन्त्र के सब अक्षरों का उस अन्तिम अक्षर अर्थात् १६वीं नित्या कला में लय हो जाता है जिसका कभी नाश अथवा क्षरण नहीं होता, तब ब्रह्म ग्रन्थि का वेध हो जाता है। अर्थात् जब मन्त्र के प्रथम अक्षर को अधः सहस्रार से उठाकर उसका विषुस्थान में लय किया जाता है, दूसरे अक्षर को विषुस्थान से उठाकर उसका मूलाधार में, तीसरे को मूलाधार से उठाकर स्वाधिष्ठान में, चौथे को स्वाधिष्ठान से उठाकर मणिपूर में, ५वें को मणिपूर से उठाकर अनाहत में, छठे को अनाहत से उठाकर विशुद्ध में, सातवें को विशुद्ध से उठाकर लम्बिका में, आठवें को लम्बिका से उठाकर आज्ञा में, नवें को आज्ञा से उठाकर बिन्दु में, दशवें को बिन्दु से उठाकर अर्धचन्द्रिका में, ग्यारहवें को अर्धचन्द्रिका से उठाकर निरोधिका में, बारहवें को निरोधिका से उठाकर नाद में, १३वें को नाद से उठाकर नादान्त में, १४वें को नादान्त से उठाकर शक्ति में और १५वें को शक्ति से उठाकर व्यापिका में,—इस प्रकार जब प्रत्येक पूर्व

अक्षर को अगले अक्षर में लीन करते हुए पूरे मन्त्र को परा कला स्वरूपा श्रीकला उन्मनी में लीन कर दिया जाता है तो सब ग्रन्थियों का वेध हो जाता है।

[ ३५ ]

**ततो गत्वा ज्योत्सनामयसमयलोकं *समयिनां ,**
**पराख्या सादाख्या जयति शिवतत्वेन मिलिता ।**
**सहस्रारे पद्मे शिशिरमहसां बिम्बपरं ,**
**तदेव श्रीचक्रं सरघमिति तद्वैन्दवमिति ॥**

सरल अर्थ—समयाचार वालों के अनुसार ज्योत्सना से परिपूर्ण समय लोक अर्थात् सहस्रार में जाकर वह परा नाम वाली शिव तत्व से मिलकर सादाख्य तत्व को जीतती है।

सहस्रार पद्म में चन्द्रमा का दूसरा बिम्ब है। वही श्रीचक्र है, वही सरघा है तथा वही बैन्दव स्थान है।

व्याख्या—कुण्डलिनी शक्ति के ऊपर जाते समय क्रमशः सब तत्वों का जय होता है अर्थात् सब तत्व एक-दूसरे में लय होते जाते हैं। यह लय-क्रम है। इस क्रम में सहस्रार में जाते हुए भगवती महा शक्ति सदाख्य अर्थात् सदाशिव या अर्धनारीश्वर तत्व को जीतकर शिव तत्व में लीन हो जाती है और फिर वह परा संवित् रूप धारण कर लेती है। यही निर्विकल्प समाधि की अवस्था है। तत्वों का वर्णन श्लोक ५ की व्याख्या में दिया जा चुका है।

समयाचार के अनुसार सहस्रार ही भगवती परा शक्ति का स्थान है, मूलाधार नहीं है, जैसा कि कौल मार्ग वाले मानते

पाठान्तर—*स समया।

हैं। इसलिए आचार्य यहाँ बता रहे हैं कि सहस्रार ही श्रीचक्र है, वही अमृत का स्थान (सरघा) है और वही बैन्दव स्थान है अर्थात् वह भगवती परा संवित् रूप से सहस्रार में निवास करती है और इसीलिये उसका पूजन वहीं होता है।

[ ३६ ]

**वदन्त्येके सन्तः परशिव पदे तत्वमिलिते ,**
**ततस्त्वं *षट्विंशी भवसि शिवयोर्मेलनवपुः ।**
**त्रिखण्डेऽस्मिन्स्वान्ते परमपदपर्यङ्क सदने ,**
**परे सादाख्येऽस्मिन्निवसति चतुर्धैक्य कलनात् ॥**

**सरल अर्थ** - एक मत वाले सन्तों का कहना है कि परम-शिव पद तत्व में मिलकर तू २६ (३६) प्रकार वाली शिव-शक्ति-मय शरीर वाली हो जाती है और तीन खण्डों वाले अपने इस अन्तर में (या अपने इन तीन खण्डों के अन्त में) परम पद रूपी पलंग पर सादाख्य तत्व से परे तू चार प्रकार के एक्य से रहती है।

**व्याख्या**— वह एक परम तत्व ही अनेक रूप धारण कर सृष्टि का सृजन करता है। श्रुति कहती है—**एकोहं बहुस्याम** अर्थात् वह परम तत्व ही सब तत्वों का कारण है। महा राज-राजेश्वरी भगवती त्रिपुर सुन्दरी ही विभिन्न रूपों में सब तत्वों का सृजन करती हैं। दृश्य अथवा ब्रह्माण्ड में यह जो कुछ भी है, सब भगवती श्री राजराजेश्वरी का ही स्वरूप है, इसीलिये आचार्यश्री कहते हैं कि भगवती का परा संवित् रूप ही सब

---

पाठान्तर—*षट् त्रिशा।

तत्वों का जनक है। वही शाक्त या शैवों के ३६ अथवा सांख्य के २६ तत्वों का रूप धारण करती है। उसी परा संवित् में सब तत्वों का लय होता है और उसी से सबका उदय होता है। श्लोक ५ की व्याख्या में यह स्पष्ट किया जा चुका है।

भगवती त्रिखण्डात्मक है, जैसा कि पहिले कहा जा चुका है। श्री यन्त्र, मन्त्र तथा शरीरस्थ चक्र सभी त्रिखण्डात्म हैं। इन सब के अन्त में वह परा संवित् जो कि चन्द्रकला अथवा मन्त्र का अन्तिम १६वाँ अक्षर है, वही भगवती का वास्तविक स्वरूप है और अपने इस परा संवित् रूप में श्री राजराजेश्वरी अपने सहस्रार रूपी गृह में परम पद रूपी पलंग पर सादाख्य तत्व से परे चार प्रकार के एक्य से रहती हैं। अर्थात् यहाँ शक्ति तथा परम शिव का चार प्रकार से एक्य है। अथवा परा संवित् रूप में भगवती का परम शिव से चार प्रकार से एक्य रहता है अर्थात् यहाँ शक्ति तथा शिव का नाम, रूप, अवस्था एवं अनुष्ठान-साम्य रहता है। अर्थात् दोनों तत्वों का एक ही नाम, रूप, अवस्था एवं कार्य रहता है।

यद्यपि यह साम्य पाँच प्रकार का है—नाम, रूप, अवस्था, अनुष्ठान एवं अधिष्ठान-साम्य। किन्तु आचार्यश्री ने यहाँ केवल चार प्रकार का ही साम्य कहा है। अधिष्ठान-साम्य कहने की आवश्यकता नहीं रहती क्योंकि शिव तथा शक्ति दोनों का एक्य होने पर वे एक ही स्थान (परमपदपर्यङ्क सदने) पर निवास करते हैं। इसी कारण आचार्यश्री यहाँ केवल चार प्रकार का ही साम्य बता रहे हैं। इस विषय में श्लोक १३ की व्याख्या भी देखें।

[ ३७ ]

**क्षितौ* वह्निर्वह्नौ वसुदलजले दिङ्मरुति दिक्- ,
कलाश्रे× मन्वश्रं द्दशि वसुरथो+ राजकमले ।
प्रतिद्वैतग्रन्थि÷स्तदुपरि चतुर्द्वार सहितं ,
महिचक्रं चैकं भवति भगकोणैक्य कलनात् ।।**

।। इति मन्त्र चक्रैक्यम् ।।

**सरल अर्थ**--पृथ्वी अग्नि में, अग्नि वसुदल में, जल दिशाओं में, वायु दिशा में, कलाश्र मनवश्र में, द्दशि वसुरथ तथा राज-कमल में, इन सबके ऊपर प्रतिद्वैत ग्रन्थि चतुर्द्वार सहित महि चक्र में,--हे भगवती ! यह भग-कोणों का एक्य हो गया।

**व्याख्या** - (१) **पृथ्वी अग्नि में**--पृथ्वो यहां पृथ्वी तत्व का संकेत करती है। पृथ्वी तत्व का स्थान मूलाधार है, इस-लिए यहां पृथ्वी का अर्थ मूलाधार है। अग्नि से यहाँ त्रिकोण अर्थ होता है, क्योंकि अग्नि का स्थान त्रिकोण है अथवा अग्नि त्रिकोण स्वरूप है। त्रिकोण का अर्थ यहाँ श्री चक्रान्तर्गत त्रिकोण होता है। इस प्रकार आचार्यश्री यहाँ मूलाधार एवं त्रिकोण का एक्य बता रहे हैं अथवा हम कह सकते हैं कि मूलाधार ही त्रिकोण है।

(२) **अग्नि वसुदल में**—यहां **अग्नि** शब्द अग्नि तत्व को इंगित करता है। अग्नि तत्व का स्थान स्वाधिष्ठान है, जैसा कि पहले कहा जा चुका है। पूज्य भगवत्पाद भगवान् श्री

---

पाठान्तर *महा। ×कलारे। +वसुरधो।
÷प्रतिद्वयै तद्ग्रन्थि।

आद्यशंकराचार्य ने भी सौन्दर्य लहरी में स्वाधिष्ठान चक्र को ही अग्नि का स्थान माना है, यथा –

**महीं मूलाधारे कमपि मणिपूरे हुतवहं,**
**स्थितं स्वाधिष्ठाने हृदिमरुतमाकाशमुपरि ।**
**मनोऽपि भ्रूमध्ये सकलमपि भित्वा कुलपथं,**
**सहस्रारे पद्मे सह रहसि पत्याविहरसि ॥९॥**
**तव स्वाधिष्ठाने हुतवहमधिष्ठाय निरतं,**
**तमीडे संवर्तं जननि महतीं तां च समयाम् ।**
**यदालोके लोकान् दहति महति क्रोध कलिते,**
**दयार्द्रा या दृष्टिः शिशिरमुपचारं रचयति ।।३९॥**

स्वाधिष्ठान चक्र अग्नि तत्व का स्थान होने से यहाँ आचार्यश्री के अग्नि शब्द का अर्थ स्वाधिष्ठान चक्र है । योग के दूसरे ग्रन्थों में स्वाधिष्ठान को जल का स्थान माना जाता है । साधारणतः योग के ग्रन्थों में जो वर्णन आया है, उसके अनुसार चक्र और उनके तत्व नीचे दिये गये अनुसार हैं –

| | चक्र | तत्व |
|---|---|---|
| (१) | मूलाधार | —पृथ्वी |
| (२) | स्वाधिष्ठान | —जल |
| (३) | मणिपूर | —अग्नि |
| (४) | हृदय या अनाहत | —वायु |
| (५) | विशुद्ध | - आकाश, तथा |
| (६) | आज्ञा | —मन |

किन्तु आचार्य के मत के अनुसार स्वाधिष्ठान अग्नि का और मणिपूर जल का स्थान है । इसोलिये भगवत्पाद ने भी अपनी सौन्दर्य लहरी में ऐसा ही माना है । भगवत्पाद तो

सौन्दर्य लहरी में श्लोक ३६ से ४१ तक चक्रों का वर्णन करते हुए चक्रों का ऊपर से नीचे यह क्रम देते हैं—

(१) आज्ञा (२) विशुद्ध (३) हृदय (४) स्वाधिष्ठान (५) मणिपूर, एवं (६) मूलाधार।

अग्नि का स्थान होने से ही यहाँ स्वाधिष्ठान को मणिपूर से पहले लिया गया है।

स्वाधिष्ठान को अग्नि का स्थान इसलिये कहा गया है क्योंकि कुण्डलिनी शक्ति जागने के बाद इसी चक्र में रहती है। आचार्य का यह मत संहिताओं तथा प्राचीन योग के ग्रन्थों पर आधारित है। वामकेश्वर तन्त्र में भी स्वाधिष्ठान को ही अग्नि का स्थान माना है—

**पद्मासन गतः स्वस्थो गुदमाकुञ्चय साधकः।**
**वायुमूर्ध्वगतिं कुर्वन् कुम्भकाविष्टमानसः॥**
**वाय्वाघातवशादग्निः स्वाधिष्ठानगतो ज्वलन्।**
**ज्वलनाघातपवनाघातैरुन्निद्रितोऽहिराट् ॥**

सम्भवतः स्वाधिष्ठान स्थित जल के अन्दर अग्नि होने से स्वाधिष्ठान को अग्नि का स्थान माना गया है। जल में स्थित यह अग्नि आज भौतिकी शास्त्र द्वारा भी प्रतिपादित है। जल को जब बर्फ के रूप में जमाया जाता है, तब यह अग्नि ऊष्मा के रूप में प्राप्त की जा सकती है और भौतिकी शास्त्र (Physics) के अनुसार यह गुप्त ऊष्मा (Latent Heat) कहलाती है। यही जल-स्थित अग्नि मणिपूर में विद्युत् के रूप में रहती है। स्वाधिष्ठान-स्थित जल मणिपूर में मेघों के रूप में रहता है। मणिपूर को मेघों का स्थान होने के कारण

ही जल का स्थान कहा गया है, क्योंकि मेघों के द्वारा ही जल की (वर्षा के रूप में) उत्पत्ति होती है।

**वसुदल**—वसु शब्द आठ की संख्या का सूचक है, क्योंकि वसु आठ हैं। इसलिये वसुदल शब्द का अर्थ यहां (श्री चक्रान्तर्गत) अष्टार है।

इस प्रकार आचार्य श्री 'वह्नौ वसुदल' द्वारा यह बता रहे हैं कि स्वाधिष्ठान चक्र ही अष्टार है।

(३) **जल दिशाओं में** जल का स्थान मणिपूर होने से आचार्य श्री का यहाँ जल से अर्थ मणिपूर चक्र से है। दिशायें दस होने से दस की संख्या की द्योतक हैं और दस से आचार्यश्री का अभिप्राय यहाँ श्री चक्रान्तर्गत अन्तर्दशार है अर्थात् मणिपूर ही अन्तर्दशार है।

(४) **वायु दिशा में**—वायु का अर्थ वायु का स्थान अर्थात् हृदय चक्र है तथा दिशायें ऊपर बताये अनुसार दस की संख्या की द्योतक होने से यहाँ श्री चक्रान्तर्गत बहिर्दशार की द्योतक हैं। इसलिये 'वायु दिशा में' का अर्थ यहाँ 'हृदय चक्र ही बहिर्दशार है' होता है।

(५) **कलाश्रे मन्वश्रं=कलाश्र मन्वश्र में**—कला सोलह होने से १६ की संख्या बतलाती हैं अर्थात् कलाश्र का अर्थ सोलह दल वाला पद्म अर्थात् विशुद्ध चक्र होता है तथा मन्वश्र का अर्थ श्रीचक्रान्तर्गत चतुर्दशार होता है, क्योंकि मनु चौदह की संख्या बतलाता है। इस प्रकार आचार्य श्री यह बता रहे हैं कि विशुद्ध चक्र ही चतुर्दशार है।

(६) **दृशि वसुरथो राजकमले—दृशि वसुरथ तथा राजकमल में**—दृशि का अर्थ है नेत्र। नेत्र दो होने से दो की संख्या

बतलाते हैं। इस प्रकार दृशि से आचार्यश्री का अभिप्राय यहाँ द्विदल पद्म अर्थात् आज्ञा चक्र से है। आज्ञा चक्र का स्थान भ्रू-मध्य होने से भी दृशि का अर्थ आज्ञा चक्र होता है। वसु आठ हैं और इसलिये आठ की संख्या बताते हैं। इस प्रकार वसुरथ द्वारा आचार्य श्री यहाँ श्री चक्रान्तर्गत अष्टदल पद्म की ओर इङ्गित करते हैं। 'राजकमले' का अर्थ षोडशदल पद्म है। राज शब्द का अर्थ यहाँ १६ की संख्या होता है, क्योंकि नृपति या राजा १६ की संख्या का द्योतक है। अपने वरिवस्या रहस्य में श्री भास्कर राय ने भी नृपति शब्द का इसी अर्थ में प्रयोग किया है। इसलिये 'राजकमले' का अर्थ यहाँ श्रीचक्रान्तर्गत षोडशदल पद्म होता है। इस प्रकार आचार्य श्री यहाँ यह बता रहे हैं कि आज्ञा चक्र ही श्रीचक्र के अष्टदल एवं षोडशदल पद्म हैं।

(७) **प्रतिद्वैत ग्रन्थिस्तदुपरि चतुर्द्वार सहितं महि चक्रं चैकं भवति भगकोणैक्य कलनात्** - इन सबके ऊपर प्रतिद्वैत ग्रन्थि चतुर्द्वार सहित महि चक्र में। हे भगवती ! यह भाग कोणों-का एक्य हो गया।

प्रतिद्वैत ग्रन्थि अद्वैत का स्थान अर्थात् सहस्रार है और चतुर्द्वार सहित महिचक्र का अर्थ श्रीचक्रान्तर्गत भू-पुर होता है। भग शब्द का अर्थ छः होता है क्योंकि भग शब्द छः की संख्या के वाचक के रूप में भी प्रयुक्त होता है। इसलिये भग कोण का अर्थ यहाँ पर षट्चक्र होता है। अर्थात् आचार्य श्री यहाँ यह बता रहे हैं कि सहस्रार ही भू-पुर है। इस प्रकार षट्चक्र और श्रीचक्र का एक्य पूरा हुआ।

पहले कहा जा चुका है कि मन्त्र ही यन्त्र है, इसलिये, मन्त्र=यन्त्र=षट् चक्र।

इस श्लोक में आचार्य श्री ने सांकेतिक शब्दों के द्वारा षट् चक्र तथा श्रीचक्र का एक्य दर्शाया है और व्यञ्जना-शक्ति का प्रयोग किया है।

इस प्रकार मन्त्र तथा चक्रों का एक्य समाप्त हुआ।

❀ द्वितीय भाग समाप्त ❀

[ ३८ ]

**षडब्जारण्ये त्वां❀ समयिन इमे पञ्चक समां,**
**यदा संविद्रूपां विदधति च षौढैक्यकलिताम्× ।**
**मनो जित्वा चाज्ञा +सरसिज इह प्रादुरभव-**
**त्तडिल्लेखा नित्या भगवति तवाधार सदनात् ।।**

**सरल अर्थ**—हे भगवती ! समयाचार वाले, मन को आज्ञा चक्र में जीतकर तुझे छः कमल रूपी अरण्य में पंचक समा (पाँच प्रकार के साम्य) तथा छः प्रकार के एक्य सहित चेतन रूप में या चिति शक्ति के रूप में अथवा ज्ञानमयी, विद्युल्लेखा के समान प्रकाश वाली मूलाधार से प्रादुर्भूत होती हुई नित्या स्वरूप मानते हैं।

**व्याख्या**—समयाचार के अनुसार कुण्डलिनी शक्ति ही राजराजेश्वरी भगवती है। योगी जब मन तत्व को जीतकर भगवती कुण्डलिनी शक्ति को जगा लेता है, तो वह विद्युत्-लेखा के समान प्रकाशमान् होकर मूलाधार से उठकर सब चक्रों का वेध करती है। श्लोक २ तथा ३ में कुण्डलिनी शक्ति के जागरण के विषय में पहले ही कहा जा चुका है।

---

पाठान्तर- ❀षडब्जारण्यैस्त्वां। ×कलितम्। +सरसिजमिह।

पाँच प्रकार का साम्य—कुण्डलिनी शक्ति के जागरणोपरान्त प्रत्येक चक्र में भगवती तथा भगवान् शङ्कर का पाँच प्रकार का साम्य होता है। यह शक्ति तथा शिव का साम्य नीचे दिये अनुसार है—

(१) अधिष्ठान साम्य=दोनों का एक ही स्थान में निवास।

(२) अनुष्ठान साम्य=दोनों का एक ही प्रकार के कार्य करना, जैसे, मूलाधार में दोनों नृत्य करते हैं (देखें, सौ०ल० श्लोक ४१)।

(३) अवस्थान साम्य=दोनों का एक अवस्था में रहना।

(४) रूप साम्य =दोनों का एक समान रूप होना, तथा

(५) नाम साम्य =एक से नाम होना, जैसे—व्योमेश्वर तथा व्योमेश्वरी।

यह पाँच प्रकार का साम्य इस प्रकार भी हो सकता है—(१) क्रिया साम्य (अनुष्ठान साम्य), (२) अवस्था साम्य (अवस्थान साम्य), (३) रूप साम्य, (४) प्रकृति साम्य तथा (५) नाम साम्य। आचार्यश्री ने यही साम्य माना है।

छः प्रकार को ऐक्य श्लोक १२ तथा १३ की व्याख्या में देखिये।

[ ३९ ]

**भवत्साम्यं केचित्त्रितयमिति *कौल प्रभृतयः,**
**परं तत्त्वाख्यं चेत्य× परमिदमाहुः समयिनः।**
**क्रियावस्थारूपं प्रकृतिरभिधा पञ्चक समं,**
**तदेषां साम्यं +स्यादवनिषु च यो वेत्ति स मुनिः॥**

इत्यैक निरूपणम्

---

पाठान्तर—*कौम्भ। ×चेत्स पर इदं। +त्वामवनिषु।

**सरल अर्थ**—कुछ कौल मतानुयायियों आदि के अनुसार तीन प्रकार का साम्य होता है अर्थात कौल मतावलम्बो तीन प्रकार का साम्य मानते हैं (जो आचार्य के अनुसार त्याज्य है), परन्तु समयाचार वालों के अनुमार एक दूसरा परम तत्व नाम वाला और है अर्थात् तेरा परम तत्व रूप इन सब से अलग है और जो इस परम तत्व से क्रिया, अवस्था, रूप, प्रकृति तथा नाम का पाँच प्रकार का साम्य जानता है, वह इस पृथ्वी पर मुनि है।

**कठिन शब्दों का विग्रह**—

चेत्यपरमिदमाहुः=च+इति+अपर+इदं+आहुः।
प्रकृतिरभिधा=प्रकृतिः+इभिधा। इभिधा=नाम।

**व्याख्या**—कौल मार्ग के मानने वालों के अनुसार मूलाधार में ही उपासना होती है। उनके अनुसार मूलाधार का त्रिकोण ही श्री चक्रान्तर्गत त्रिकोण है और इसके मध्य में ही बिन्दु-स्थान है जो कि भगवती का स्थान है। त्रिकोण ही योनि-स्थान है, इसलिये प्रत्यक्ष योनि को ही भगवती का स्थान मानकर भी इनकी पूजा होती है। परन्तु समयाचार के अनुसार भगवती कुण्डलिनी शक्ति का वास्तविक स्थान सहस्रार है जहाँ कि वह जागरणोपरान्त परा संवित् रूप में परम शिव के साथ पाँच प्रकार के साम्य अर्थात् क्रिया, अवस्था, रूप, प्रकृति तथा नाम के साम्य सहित रहती है। जो इस प्रकार के साम्य को जानता है अर्थात् जिसने कुण्डलिनी शक्ति को जगाकर परम शिव में लीन कर लिया है अथवा जिसने इस प्रकार निर्विकल्प समाधी को प्राप्त कर लिया है, वही इस पृथ्वी पर मुनि है।

यहाँ आचार्य श्री ने कौल और समय मार्ग के पूजन का अन्तर बताया है। कौल उपासक भगवती कुण्डलिनी शक्ति

की मूलाधार में ही उपासना करते हैं, लेकिन समय मार्ग के साधक भगवती कुण्डलिनी शक्ति को जगाकर उसका सहस्रार में पूजन करते हैं।

इस प्रकार भगवती कुण्डलिनी शक्ति
का परम शिव से एक्य प्रतिपादित हुआ।

अब आगे के दो (४० तथा ४१वें) श्लोकों में आचार्यश्री ने शरीर में श्रीचक्र के तीन प्रकार के प्रस्तार भेद का निरूपण किया है। श्रीचक्र प्रसार भेद से तीन प्रकार का है—

(१) मेरु प्रस्तार, (२) कैलाश प्रस्तार तथा (३) भू-प्रस्तार। इनका पूरा विवरण जानने के इच्छुक पाठक सौन्दर्य लहरी के ३१वें श्लोक पर श्री लक्ष्मीधराचार्य की टीका देखें।

[ ४० ]

**वशिन्याद्या अष्टावकचटतपाद्याः प्रकृतयः,**
**स्ववर्गस्थाः स्वस्वायुध कलितहस्ताः स्वविषयाः।**
**यथावर्गं वर्णप्रचुरतनवो* याभिरभवं-**
**स्तव प्रस्तारास्ते त्रय इति जगुस्ते समयिनः॥**

**सरल अर्थ**—अ, क, च, ट, त, प (य, श) आदि आठ प्रकृतियाँ, वशिनी आदि आठ देवियाँ अपने-अपने वर्गों में स्थित, अपने-अपने आयुधों से शोभायमान् हाथों वाली तथा अपने-अपने विषयों वाली, यथा वर्ग सारी वर्ण माला में जिस प्रकार प्रकट होती हैं, वह तीन प्रकार का तेरा प्रस्तार है,—ऐसा समयाचार वाले कहते हैं।

---

पाठान्तर—*यदा वर्गा वर्णप्रचुरतरवो।

व्याख्या--वशिनी आदि आठ वाणी की देवी कही जाती हैं। इनके नाम इस प्रकार हैं—(१) वशिनी, (२) कामेश्वरी, (३) मोदनी, (४) विमला, (५) अरुणा, (६) जयनी, (७) सर्वेश्वरी अथवा सर्वेशी एवं (८) कौलिनी।

वर्णमाला के आठ वर्ग ये हैं—(१) अ वर्ग, (२) क वर्ग, (३) च वर्ग, (४) ट वर्ग, (५) त वर्ग, (६) प वर्ग, (७) य वर्ग तथा (८) श वर्ग।

वशिनी आदि आठों देवियों का क्रमशः वर्णमाला के प्रत्येक वर्ग से सम्बन्ध है, यथा—

वशिनी अ वर्ग की अधिष्टात्री देवी है,
कामेश्वरी क वर्ग की अधिष्ठात्री देवी है,
मोदनी च वर्ग की,
विमला ट वर्ग की,
अरुणा त वर्ग की,
जयनी प वर्ग की,
सर्वेशी य वर्ग की, तथा
कौलनी श वर्ग की अधिष्ठात्री देवी है।

[ ४१ ]

**इमा नित्या वर्णास्तव चरणसंमेलनवशा-**
**न्महामेरुस्था:* स्युर्मनुमिलन कैलास वपुषः।**
**वशिन्याद्या एता अपि तव+ सबिन्द्वात्मकतया,**
**महीप्रस्तारोऽयं क्रम इति रहस्यम् समयिनाम्॥**

---

पाठान्तर—*स्थास्यन्मनु। +च सहवि···।

सरल अर्थ—ये नित्यायें, वर्ण और तेरे चरण अर्थात् नाद के सम्मेलन के वश तू महामेरु में स्थित होती है और मन्त्र के साथ मिलकर कैलाश रूपी शरीर वाली होती है। ये वशिनी आदि भी तेरे बिन्दु-आत्मक रूप (अर्थात् ६ चक्रों रूपी तेरे शरीर से मिलकर) महिप्रस्तार अर्थात् भू-प्रस्तार क्रम बनाती हैं। यह समयाचार वालों का रहस्य है।

व्याख्या—(१) नित्याओं का, वर्णमाला का तथा नाद का एक्य मेरु-प्रस्तार है। (चरण का अर्थ नाद होता है, जैसा कि श्लोक १३ में स्पष्ट किया जा चुका है)।

(२) नित्याओं का, वर्णमाला का, नाद का तथा मन्त्र का एक्य कैलाश प्रस्तार है।

(३) वशिनी आदि वाणी की देवियों और षट्चक्रों का एक्य भू-प्रस्तार है। (बिन्दु का अर्थ षट्चक्र है, जैसा कि श्लोक १३ में दिया है)।

इस प्रकार यह श्रीचक्र के ३ प्रकार के प्रस्तार का निरूपण हुआ।

इस विषय की अधिक जानकारी के लिये पाठक सौन्दर्य लहरी के ३१वें श्लोक पर श्री लक्ष्मीधराचार्य की टीका देखें।

अब आगे के श्लोकों में आचार्यश्री कौल मत का खण्डन करके समय मार्ग की श्रेष्ठता प्रतिपादित करते हैं।

[ ४२ ]

भवेन्मूलाधारं तदुपरितनं चक्रमपि तत्,<br>
द्वयं तामिस्राख्यं शिखिकिरण संमेलनवशात्।<br>
तदेतत्कौलानां प्रतिदिनमनुष्ठेयमुदितं,<br>
भवत्या वामाख्यं मतमपि परित्याज्यमुभयम्॥

**सरल अर्थ**—मूलाधार और उससे ऊपर का चक्र, ये दोनों अग्नि की किरणों से मिले हुए होने के कारण तामिस्र संज्ञक हैं अर्थात् अन्धकारमय हैं। कौलमतानुयायी प्रतिदिन इन्हीं में अनुष्ठान करके प्रसन्न होते हैं। वामाचार वालों का मत भी ऐसा ही है। ये दोनों परित्याज्य हैं।

**व्याख्या**—आचार्य श्री इस श्लोक में नीचे के दो चक्र अर्थात् मूलाधार तथा स्वाधिष्ठान को अन्धकारमय बता रहे हैं। ऊपर के चारों चक्र तो सूर्य तथा चन्द्र द्वारा प्रकाशित हैं, किन्तु इन दोनों चक्रों में उनका प्रकाश नहीं पहुँच पाता। विशुद्ध तथा आज्ञा चक्र चन्द्र की किरणों द्वारा प्रकाशित हैं। अनाहत सूर्य का स्थान है और इस सूर्य की किरणें मणिपूर चक्र को भी आलोकित करती हैं, किन्तु मणिपूर स्थित मेघों के कारण वे नीचे नहीं जा पातीं। जिस प्रकार आकाश स्थित मेघों द्वारा सूर्य के ढक जाने से पृथ्वी पर अन्धकार हो जाता है, उसी प्रकार मूलाधार तथा स्वाधिष्ठान में अन्धकार रहता है। इसीलिये समयाचार वाले योगी इन दो चक्रों में उपासना अर्थात् कुण्डलिनी शक्ति का ध्यान नहीं करते। इसके विपरीत कौल और वाममार्गी इन्हीं दो चक्रों में पूजन करते हैं। समयाचार वालों के लिये ये दोनों चक्र त्याज्य हैं।

[ ४३ ]

**अमीषां कौलानां भगवति भवेत्पूजनविधि-**
**स्तव स्वाधिष्ठाने तदनु च भवेन्मूलसदने।**
**अतो बाह्या पूजा भवति भगरूपेण च ततो,**
**निषिद्धाचारोऽयं निगमविरहोऽनिन्द्यचरिते॥**

**सरल अर्थ**—हे भगवती ! इन कौलों की तेरी पूजन-विधि स्वाधिष्ठान में और फिर मूलाधार में होती है। इसलिए उनकी बाह्य पूजा भगादि के रूप में होती है और इसलिये यह निषिद्धाचार है। हे अनिन्द्य (परम पवित्र) चरित्र वाली! यह शास्त्र के विरुद्ध है।

**व्याख्या**—कौल तथा वाम मार्गी लोगों की पूजन-विधि में प्रत्यक्ष पञ्चमकार का प्रयोग होता है और ये योग स्त्री की योनि का पूजन करते हैं। समयाचार के अनुसार यह विधि निषिद्ध है और निगम शास्त्र के भी विरुद्ध होने से त्याज्य है। तन्त्रों में भी म-पञ्चक का प्रत्यक्ष निषेध हैं और उनके गूढ़ अर्थ स्पष्ट किए हैं, यथा—

श्री देव्युवाच—

मुद्रा नाम किं जातं तत्वं किन्नामकं भवेत।
मकाराः किं स्वरूपाश्च(स्वरूपाः स्यु)सर्वं कथय शङ्कर ॥१६

श्री शिव उवाच—

रहस्यं कथ्यते देवि शृणु यत्नेन साम्प्रतम्।
महादेव्या(महादेवो)यथा प्रोक्तं तद्रूपं ब्रूयते(क्रियते) यथा ॥१७

तद्रूपधारणान्मुद्रा तद्रूपाद्विकृतिर्भवेत।
बिना मार्गं महेशानी गतिश्चैव कथं भवेत ॥१८

मार्ग प्रदर्शनाद्देवि गतिः सर्वत्र दृश्यते।
तन्मार्ग दर्शनार्थं हि (नान्नाथ) मकारा पञ्च कीर्तिता ॥१६

ज्ञात्वा फलमवा(मथा)प्नोति नात्र कार्या विचरणा।
(ब्रीहीयं मण्डलाकारं चन्द्रबिबनिभं शुभं,
चारु पक्व मनोहारि शर्कराद्यैः प्रपूरितं,

पूजा काले च देवीनां मुद्रैषा परिकीर्तिता ।)
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च ईश्वरश्च सदाशिवः ॥२०
एते पंच म(प्र)काराश्च पंचनाम प्रका(चा)र काः ।
आद्यम विद्या शिवा सर्वा पूर्णेति पंचम विदुः ॥२१
पंच तत्वानि देवेशि केरले कीर्तितानि च।
पंच (एवं) मुद्रानामधरा(धुना)स्त्यान्दो वच्मि सशृणु ॥२२
ब्राह्मी च वैष्णवी रौद्री ईश्वरी श्रीः सदाशिवा।
पंचमुद्राः समाख्यातास्तत्वना(स्तत्तन्ना)म धरा शिवे ॥२३
सन्तर्प्य कुण्डलीं शक्तिः पंच मुद्राविधानतः।
अलिना पिशितं मीनं मुद्रा मैथुनमुत्तमम् ॥२४
मकार पंचकं यत्र तत्र देवी(वो) न संशयः।
न मद्यं माधवी मद्यं मद्यं शक्ति रसोद्भवम् ॥२५
सुषुम्ना शङ्खिनी मुद्रा उन्मन्यनुत्तमं रसः (पुनः)।
सामरस्यामृतोल्लासं मैथुनं च सदाशिवम् ॥२६
महाकुण्डलिनी शक्तिस्तद्योगार्थं महेश्वरि।
शक्तिः प्रोक्ता महेशानि न भोगार्थं मयेरिता ॥२७
कुण्डली सामरस्यार्थं स्वयम्भूलिङ्ग मीरितम्।
एतदभ्यासयोगेन कुण्डली रसवान भवेत ॥२८

श्री देव्युवाच—

कुण्डली कीदृशी देव तद्रसः कीदृशो भवेत्।

श्री शिव उवाच—

अवाच्यं(त्य)(अगम्यं)यद्भवेद्वच्मि(द्ब्रह्म)तद्रसस्तु यथा भवेत ॥२९
तथा समरसानन्द रसः सङ्कीर्तितो मया।
अज्ञानादपि देवेशि भोग वासनायाऽपि च ॥३०
फल संसारजं देवि गर्भ रूपेण जाग्रति(यते)।
ज्ञात्वा(नात्) फलमवाप्नोति त्रैलोक्य विजयी भवेत् ॥३१

तस्मात्तु पञ्चमी मुद्रा कीर्तिता तु मया तव।
संयोगामृतयोगेन कुण्डल्युत्थान कारणात् (कारयेत्) ॥३२

चा(च)न्द्र पात्रें (पत्रे) यदा याति तन्मद्यं परिकीर्तितम्।
मणिपूरे दशदले सुषुम्नायां यदा गतिः (गच्छति) ॥३३

तत्करामृतयोगाद्धि (संयोगः) द्वितीया परिकीर्तिता।
हृत्पद्मद्वादशारे तु शंखिनी कूर्म संस्थिता ॥३४

सुधासागर क्रीडायां मत्स्यस्तत्र प्रकीर्तितः।
मुद्रा तृतीया गदिता चतुर्थी षोडशच्छदे (शे-दले) ॥३५

चन्द्र सूर्याग्नि संभिन्ना वर्तु ला बिन्दुगर्भिता।
भग(मग) ध्वाजाख्यचरणकै(वर्णाङ्कै)र्घटिता(घण्टिका)
तु चतुर्थिका ॥३६

पञ्च(एवं) मुद्रा मया प्रोक्ता मोक्ष(मूख्य)भाव फलाप्तये।
मकार पञ्चकेनैव ज्ञानमेतस्य जायते ॥३७

मकार (कारण) रूप मार्गोहि कीर्तितस्ते मया तव।
इति संक्षेपतः प्रोक्तं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥३८

—इति श्री शक्तिसंगम महातन्त्रराजे उत्तर भागे द्वितीय खण्डे (तारा खण्डे) श्रीमदक्षोभ्य महोग्रतारा संवादे मुद्रा संकेत नाम द्वात्रिंशति (पंचं त्रिशतं) पटलः।

मद्य—व्योम पंकज निस्यन्द सुधापान रतो नरः।
मधुपायी समः प्रोक्तस्त्वितरे मद्यपायिनः॥
—कुलार्णव तन्त्रे

जिह्वया गल संयोगात् पिवेत् तदमृतं तदा।
योगिभिः पीयते तत्तु न मद्यं गौडपैष्टिकम्॥
—गंधर्व तन्त्रे

मांस—पुण्यापुण्ये पशुं हत्वा ज्ञान-खडगेन योगवित् ।
परे लयं नयेच्चित्तं मांसाशी स निगद्यते ॥
—कुलार्णव तन्त्रे

मत्स्य—गङ्गायमुनयोर्मध्ये द्वौ मत्स्यौ चरतः सदा ।
तौ मत्स्यौ भक्षयेत यस्तु स भवेन्मत्स्य साधकः ॥

मुद्रा—सत्संगेन भवेन्मुक्तिरसत्संगेषु बन्धनम् ।
असत्संगमुद्रणं यत्तु तन्मुद्रा परिकीर्तिता ॥

मैथुन—इडापिंगलयोः प्राणान् सुषुम्नायां प्रवर्तयेत् ।
सुषुम्ना शक्तिरुद्दिष्टा जीवोऽयं तु परः शिवः ।
तयोस्तु संगमे देवैः सुरतं नाम कीर्तितम् ॥

[ ४४ ]

नवव्यूहं कौल प्रभृतिक*मतं तेन स विभु-
र्नवात्मा देवोऽयं जगदुद×कृद्भैरव वपुः,
नवात्मा वामादि प्रभृतिभिरिदं +भैरव वपु-
र्महादेवी ताभ्यां जनक जननीमज्जगदिदम् ॥

सरल अर्थ—कौल आदि मतों के अनुसार नौ व्यूह हैं, उन के द्वारा वह विभु नवात्मा देह (नवात्मा भगवान् शंकर का नाम है) भैरव रूप से जगत् का उदय अर्थात् संसार की रचना करते हैं। वह भैरव शरीर वाला नवात्मा वामादि देवियों के साथ, उनके लिए, हे महादेवी ! जनक-जननीवत् है।

---

पाठान्तर—*मिदं। ×कृच्छैशव। +वैन्दव।

**व्याख्या** नवात्मा भगवान् शंकर हैं और शिव के नौ व्यूह ये हैं—

काल, कुल, नाम. ज्ञान, चित्त, नाद, बिन्दु, कला तथा जीव। (सूर्य तथा चन्द्रमा काल के अन्तर्गत आ जाते हैं)।

वामादि नौ शक्तियां इस प्रकार हैं—वामा, ज्येष्ठा, रौद्री, अम्बिका, इच्छा, ज्ञान, क्रिया, शान्ति तथा परा।

इस श्लोक में आचार्यश्री कौल मत बता रहे हैं जिसके अनुसार परमेश्वर (परम ब्रह्म) नौ व्यूहात्मक है और वह वामादि देवियों के साथ नौ प्रकार के ऐक्य से भैरव-भैरवी रूप से जगत् का कर्ता, भर्ता आदि होता है, यथा –

**नव व्यूहात्मको देवः परानन्द परात्मकः।**
**नवात्मा भैरवौ देवो भुक्ति मुक्ति प्रदायकः॥**
**परानन्द परा शक्तिश्चिद्रूपानन्द भैरवी।**
**तयोर्यदा सामरस्यं जगदुत्पद्यते तदा॥**

[ ४५ ]

**भवेदेतच्चक्रद्वितयमतिदूरं समयिनां,**
**विसृज्यैतद्युग्मं तदनु मणिपूराख्य सदने।**
**त्वया सृष्टैर्वारि* प्रतिफलित सूर्येन्दुकिरणै-**
**र्द्विधा× लोके पूजां विदधति भवत्याः समयिनः॥**

**सरल अर्थ**—समयाचार वालों के लिए यह द्वितीय चक्र (स्वाधिष्ठान) अति दूर हो, क्योंकि इन दोनों (मूलाधार तथा स्वाधिष्ठान) को त्याग कर (इनका विसर्जन करके) इनके

---

पाठान्तर—*सृष्टे वारि। ×विभा।

पीछे मणिपूर नामक सदन में तेरे द्वारा उत्पन्न होने वाली, जल से प्रतिफलित सूर्य और चन्द्रमा की किरणों के द्वारा दो प्रकार से तेरा पूजन समयाचार वालों के लिए होता है।

**व्याख्या**—इस श्लोक में आचार्य स्वाधिष्ठान तथा मूलाधार में ध्यान का निषेध कर मणिपूर चक्र में भगवती कुण्डलिनी शक्ति का ध्यान करनां समयाचार वालों के लिये श्रेय बता रहे हैं। मणिपूर में मेघ रूपी जल पर प्रतिविम्बित सूर्य तथा चन्द्रमा की किरणों के द्वारा भगवती का ध्यान दो प्रकार से किया जा सकता है। सूर्य की किरणों के द्वारा भगवती का स्वरूप इन्द्रधनुष की आभायुक्त तथा चन्द्रमा की किरणों के विम्ब से ज्योत्स्नामय हो जाता है।

अथवा पाठान्तर के अनुसार मणिपूर में मेघ रूपी जल पर प्रतिविम्बित सूर्य तथा चन्द्रमा की किरणों द्वारा भगवती का ध्यान प्रकाश रूप से किया जाता है।

[ ४६ ]

**अधिष्ठानाधार द्वितयमिद मेवं* दशदलं,**
**सहस्राराज्जात मणिपुर×मतोऽभूद्दशदलम्।**
**हृदम्भोजान्मूलान्नृपदलमभूत्स्वान्तकमलं,**
**तदेवैको बिन्दुर्भवति जगदुत्पत्तिकृदयम्॥**

**सरल अर्थ**—सहस्रार से उत्पन्न मूलाधार तथा स्वाधिष्ठान के दश दल मणिपूर के दश दल हो जाते हैं। हृदय तथा मूलाधार के मिलकर सोलह दल विशुद्ध चक्र (के सोलह दल) हो जाते हैं और यही एक बिन्दु (सहस्रार में) हो जाता है

---

पाठान्तर- मेतत्। ×मितो।

जिसमे कि उत्पत्ति आदि होती है अथवा जो कि जगत् की उत्पत्ति का कारण है।

**व्याख्या**—इस श्लोक में आचार्य एक परम तत्व से ही जगत् की उत्पत्ति बता रहे हैं। यह परम तत्व ही सहस्रारस्थ बिन्दु है जो कि दशधा होकर मूलाधार तथा स्वाधिष्ठान के दश दल बनाता है। अर्थात् मूलाधार तथा स्वाधिष्ठान के दश दल उसी एक बिन्दु के प्रसार हैं जो लय-क्रम में फिर से सहस्रार में एक हो जाते हैं। यथा—

**दशधा भिद्यते बिन्दुः एक एव परात्मकः।**
**चतुर्धाऽऽधार कमले षोढाऽधिष्ठान पङ्कजे॥**
**उभयाकार रूपत्वात् इतरेषां तदात्मता।**

मूलाधार में वह बिन्दु चार प्रकार का—मन, बुद्धि, अहंकार तथा चित्त स्वरूप होता है तथा स्वाधिष्ठान में छः प्रकार का—काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद तथा मात्सर्य रूप होता है। इस प्रकार वह एक परम तत्व दशधा होकर जगत् का सृजन करता है। मणिपूर चक्र के दस दलों में यह दसों रूप में है अर्थात् मणिपूर चक्र में मूलाधार तथा स्वाधिष्ठान दोनों का युग्म रूप है। इसी प्रकार मणिपूर के दस दल तथा मूलाधार एवं स्वाधिष्ठान दोनों को मिलाकर अनाहत चक्र के बारह दल हो जाते हैं। अनाहत के बारह दल तथा मूलाधार के चार दल मिलकर विशुद्ध के सोलह दल हो जाते हैं। आज्ञा के दो दल मूलाधार एवं स्वाधिष्ठान हैं और यही सहस्रार में एक बिन्दु रूप हो जाते हैं। इस प्रकार मणिपूर से आज्ञा चक्र तक के सब चक्र मूलाधार तथा स्वाधिष्ठान रूप हैं। इसलिये इन सब चक्रों को छोड़कर सहस्रार में एक बिन्दु रूप में भगवती के परा संवित् रूप का ध्यान करना चाहिए। अथवा 'यह सब

उस परा संवित् का ही रूप है'—यह ध्यान करना चाहिये और इस प्रकार पिण्ड, ब्रह्माण्ड तथा परमात्मा के ऐक्य का ध्यान करना चाहिये ।

उत्पत्ति — लय

परम बिन्दु — सहस्रारस्थ

↑

आज्ञा—मूलाधार + स्वाधिष्ठान

↑

विशुद्ध—अनाहत के १२ + मूलाधार के ४ दल = १६ दल

↑

अनाहत—मणिपूर के १० + मूलाधार + स्वाधिष्ठान = १२ दल

↑

दशधा — मणिपूर—४ + ६

४ — ६ ↑

मूलाधार — स्वाधिष्ठान

[ ४७ ]

सहस्रारं बिन्दुर्भवति च ततो बैन्दवगृहं,
तदेतस्माज्जातं जगदिदमशेषं *स करणम् ।
ततो मूलाधाराद्द्वितयमभवत्तद्दशदलं,
सहस्राराज्जातं तदिति दशधाबिन्दुरभवत् ॥

पाठान्तर—*न करणम् ।

**सरल अर्थ**—सहस्रार बिन्दु होता है, इसी कारण (इसी से) वह बैन्दवगृह है। उस बिन्दु से ही कारण सहित यह सम्पूर्ण जगत् उत्पन्न होता है। उस बिन्दु से ही मूलाधार तथा स्वाधिष्ठान के दस दलों की उत्पत्ति होती है। सहस्रार से उत्पन्न होकर यही दस प्रकार का बिन्दु हो जाता है।

**व्याख्या**—शक्ति का निर्गुण स्वरूप बिन्दुरूपा है। कुण्डलिनी शक्ति सहस्रार में परम शिव से मिलकर बिन्दु रूपा हो जाती है अर्थात् उन्मनी अवस्था में यह बिन्दु रूपा है अथवा कुण्डलिनी शक्ति सहस्रार में बिन्दु रूप में निवास करती है, इसीलिए सहस्रार को बैन्दव गृह कहते हैं। शक्ति का यह रूप ही परम बिन्दु या कारण बिन्दु है। यह बिन्दु ही सकल जगत् का कारण है और इसीलिए इसे कारण बिन्दु कहते हैं। इस अवस्था में शक्ति तथा शिव अभिन्न रूप रहते हैं और यह अभिन्न अवस्था ही इनका पाँच प्रकार का साम्य है।

यह अवस्था चणकवत् अर्थात् चने के सदृश्य कही जाती है जिसमें दो दालें एक रूप होकर रहती हैं। दोनों दालें शिव-शक्ति सदृश्य हैं और चना कारण बिन्दु रूप है। जब इस बीज से वृक्ष की उत्पत्ति होती है तो पहले बीज फूलता है, फिर उसकी दोनों दालें अलग-अलग हो जाती हैं और तब अंकुर फूटता है जो कि वृक्ष का कारण होता है। इसी प्रकार जब निष्क्रिय ब्रह्म सृष्टयाभिमुख होता है तो उसमें पहले अहं का स्फुरण होता है। यही उसका फूलना है और यही कारण बिन्दु है। फिर उसमें अहं और इदं का उदय होता है जो शिव-शक्ति स्वरूप है और इनके मिथुन से नाद बिन्दु की उत्पत्ति होती है। शिव-शक्ति ही श्वेत तथा रक्त बिन्दु या कार्य

बिन्दु एवं बीज हैं। सहस्रार से उत्पन्न यह विन्दु दशधा होकर (श्लोक ४६ के अनुसार) मूलाधार एवं स्वाधिष्ठान कमलों के दस दल बनाता है।

[ ४८ ]

तदेतद्विन्दोर्यद्दशकम भवतत्प्रकृतिकं,
दशारं सूयारं नृपदलमभूत्स्वान्त *कमलम्।
रहस्यं कौलानां द्वितयम भवन्मूल सदनं,
तथा ×धिष्ठानं च प्रकृतिमिह+सेवन्त इह ते॥

**सरल अर्थ**—उसी दशधा बिन्दु से मणिपूर, हृदय, विशुद्ध तथा आज्ञा चक्र के दस, बारह, सोलह तथा दो दल बनते हैं। कौल मार्ग के अनुयायियों के अनुसार मूलाधार एवं स्वाधिष्ठान ही कारण स्थान है और इसीलिए वे इन चक्रों में ही प्रकृति रूपा भगवती की सेवा (उपासना) करते हैं।

**व्याख्या**—सम्पूर्ण जगत् का कारण बिन्दु जो सहस्रारस्थ है, वही दशधा होकर सब चक्रों के दलों के रूप में प्रकट होता है (यह श्लोक ४६ में स्पष्ट किया गया है)। कौल मार्गावलम्बियों के अनुसार मूलाधार ही बिन्दु स्थान है और यही स्वाधिष्ठान में प्रकट होकर जगत् का कारण बनता है, इसलिए वे लोग इन नीचे के चक्रों में ही भगवती की उपासना करते हैं तथा मूलाधार को ही बैन्दव गृह (बिन्दु स्थान) मानते हैं तथा पञ्च मकार रूप बाह्य उपासना में ही रत रहते हैं।

---

पाठान्तर—*नेत्रकमलम्। ×तदा। +मथ सेवन्त्विह।

[ ४९ ]

**अतस्ते कौलास्ते भगवति दृढप्राकृतजना ,**
**इति प्राहुः प्राज्ञाः कुलसमयमार्गद्वयविदः ।**
**महान्तः सेवन्ते सकलजननीं बैन्दवगृहे ,**
**शिवाकारां नित्याममृतक्षरिकामैन्दवकलाम् ॥**

**सरल अर्थ**--इसलिये, हे भगवती ! ये कौल उपासक दृढ़ प्राकृत जन हैं, ऐसा कुल मार्ग तथा समय मार्ग दोनों के जानने वाले विद्वानों का कहना है। महान् पुरुष तो सबकी जननी (अथवा सब कलाओं की जननी), शिवाकारा, नित्या, अमृत को क्षरिका चन्द्रकला का बैन्दव गृह (सहस्रार) में ही सेवन करते हैं अर्थात् उस परा संवित् की सहस्रार में ही उपासना करते हैं।

**व्याख्या** कौल मार्ग की उपासना बाह्य उपासना है। मपञ्चक के प्रत्यक्ष प्रयोग तथा मूलाधार एवं स्वाधिष्ठान तक ही सीमित होने से यह उपासना त्याज्य है और कुलाचार तथा समयाचार के आचार्यों के अनुसार इस प्रकार के उपासक दृढ़ प्राकृतजन हैं। यह उपासना निम्न स्तर के उपासकों के लिए है। उच्च श्रेणी के साधक तथा महान् पुरुष तो सहस्रार में ही चन्द्रकला के रूप में भगवती कुण्डलिनी शक्ति की उपासना करते हैं अर्थात् कुण्डलिनी शक्ति को जगाकर, सहस्रार में ले जाकर, परमशिव में लीन करके, उस सादाख्य तत्व की उपासना करते हैं।

[ ५० ]

इदं *कालोत्पत्तिस्थितिलयकरं पद्मनिकरं,
त्रिखण्डं श्रीचक्रं मनुरपि ×च तेषां च मिलनम्।
तदैक्यं षोढा वा भवति च चतुर्धेति च तथा,
तयोः साम्य पञ्चप्रकृतिकमिदं शास्त्रमुदितम् ॥

सरल अर्थ—यह काल, उत्पत्ति, स्थिति, लय आदि सब का कर्ता, कमलों का समूह, तीन खण्ड वाला श्री चक्र तथा मन्त्र और उनका मिलन, छः अथवा चार प्रकार का ऐक्य तथा उन दोनों का पांच प्रकार का (प्रकृति आदि) साम्य शास्त्र द्वारा प्रतिपादित है अथवा यही शास्त्रों का मत है।

व्याख्या—(१) काल, उत्पत्ति, स्थिति,
लय आदि का कर्ता—परा शक्ति

(२) कमलों का समूह —षट चक्र

(३) तीन खण्डों वाला
श्रीचक्र—सोम, सूर्य, अनलात्मक
तीन खण्ड वाला
श्रीचक्र

(४) मन्त्र —श्री विद्या का मन्त्र

इनका छः तथा चार प्रकार का ऐक्य तथा पाँच प्रकार का साम्य पहले बताया जा चुका है।

अब आगे के दो श्लोक फल श्रुति के हैं।

---

पाठान्तर—*कौलोत्पति। ×तु।

[ ५१ ]

**उपास्तेरेतस्याः फलमपि च सर्वाधिकमभू-**
**त्तदेतत्कौलानां फलमिह हि चैतत्समयिनाम् ।**
**सहस्रारे पद्मे सुभग सुभगोदेति *सुभगे,**
**परं सौभाग्यं यत्तदिह तव सायुज्यपदवी ॥**

इस प्रकार की अर्थात् समय मार्ग की उपासना का फल भी सबसे अधिक है । कौल मार्ग की उपासना का जो फल है, वह भी समयाचार वालों को है अर्थात् समयाचार वालों को कौल उपासना का भी फल मिलता है । सहस्रार पद्म में, हे सुभगे ! तेरा परम ऐश्वर्य रूपी उदय होता है जो कि तेरी परम सौभाग्यदायिनी सायुज्य पदवी देने वाला है । समय मार्ग की साधना अर्थात् सहस्रार में भगवती की परम तत्व रूप में उपासना का फल सायुज्य मुक्ति है ।

[ ५२ ]

**अतोऽस्याः संसिद्धौ‡ सुभगसुभगाख्या गुरुकृपा-**
**कटाक्षव्यासङ्गात्स्रवदमृतनिष्यन्दसुलभा ।**
**तया विद्धो योगी विचरति निशायामपि दिवा,**
**दिवा+ भानू रात्रौ विधुरिव कृतार्थी कृत×मतिः॥**

* इति गौड़पादाचार्य विरचिता सुभगोदय स्तुतिः सम्पूर्णा *

---

पाठान्तर – *क्त्तेति सुभगं ।

‡अतस्ते संसिद्धा । +दिवा वा रात्रौ वा । ×इति ।

अतः इस (समय मार्ग) की सिद्धि होने पर तथा गुरु के कृपा-कटाक्ष से अर्थात् गुरु-कृपा द्वारा परम सौभाग्यप्रद सुभगा नामक कुण्डलिनी शक्ति का जागरण होने पर और विशेष संग से अर्थात् गुरु के साथ रहकर साधक जब गुरु को प्रसन्न करके उनसे समय मार्ग के रहस्य को जान लेता है तथा महा वेध दीक्षा प्राप्त कर लेता है, तब उसे अमृत-स्रवरण सुलभ होता है अर्थात वह सहस्रारस्थ चन्द्र से टपकने वाली सुधा का पान तथा रसास्वादन करता है और इस प्रकार विद्ध योगी उससे कृतार्थी कृतमति होकर रात्रि में भी दिन के समान, दिन में सूर्य की तरह तथा रात्रि में चन्द्रमा की तरह विचरण करता है अर्थात् इस प्रकार सिद्धि-प्राप्त समयाचार के योगी को देश, काल तथा परिस्थितियाँ विचलित नहीं करतीं। वह हर समय गीता में कहे भगवान् के वचनों के अनुसार 'समधी' होकर रहता है, सूर्य एवं चन्द्रमा के सदृश्य अबाध गति से इस पृथ्वी पर स्वच्छन्द होकर विचरण करता है तथा सबका उपकार करता है।

॥ अलम्-शुभम् ॥

इस प्रकार श्री गुरु-कृपा से यह
सौभाग्योदयम् नामक टीका पूर्ण हुई।